॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२२२

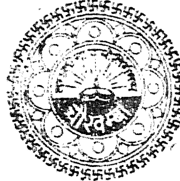
॥ श्रीः ॥

सन्धिचन्द्रिका

कारक-समास-तिङन्त-कृदन्तादिपरिशिष्टसहित

सम्पादकः

पण्डित श्री रामचन्द्र झा व्याकरणाचार्य



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९७७

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०३४

मूल्य : [illegible]-००

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० नं० १३८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्राक्कथन

संस्कृत भाषा विश्वकी प्राचीनतम भाषाओं में अन्यतम है। भारतीय पुरातत्वके विषयमें पूर्ण और यथार्थ ज्ञानके लिए संस्कृत ही एकमात्र अनन्य साधारण साधन है। बहुत ही संतोष और प्रमोदका विषय है कि संस्कृत शिक्षा-पद्धतिके सुधारकी ओर भी स्वतन्त्र भारतकी सरकारका ध्यान आकृष्ट हुआ है और अनुदिन हो रहा है। 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी होती है' अतः राष्ट्रभाषा हिन्दी स्वीकृत होनेके पश्चात् जब संस्कृत अनिवार्य रूपसे पढ़नेकी आवश्यकता हो गयी है तब विद्वानोंने भी विविध इति कर्त्तव्यतामय स्वल्प श्रममें अधिक लाभप्रद ग्रन्थोंके प्रणयनमें यथेष्ट ध्यान दिया है। प्रस्तुत पुस्तिका भी उसीका हेतुभूत है। अगर अल्प वयस्क बालकों को इससे कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपने श्रमको सफल समझूँगा।

इस पुस्तकके प्रणयनमें मित्रवर श्री पं० शोभित मिश्र जी न्यायव्याकरणाचार्यने विशेष सहायता प्रदान की है तदर्थ मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ। साथ ही साथ जिन ग्रंथों से मुझे आंशिक सहायता मिली है मैं उन ग्रन्थकारोंका भी विशेष आभारी हूँ।

अन्तमें इस पुस्तकके प्रकाशक 'चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय' के अध्यक्ष श्रेष्ठिवर स्व० बाबू हरिदासजी गुप्त के सुपुत्र बाबू जयकृष्णदासजी गुप्तका आभार प्रदर्शित करना भी मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। अँग्रेजके शासनकालमें जब संस्कृत मृत भाषा कही जा रही थी, उस समय भी आपका उत्साह कम नहीं था। संस्कृतके उत्थानके लिये ६२ वर्षोंसे निरन्तर आप भगिरथ प्रयत्न कर रहे हैं। अपने ही हाथों से एक सहस्रसे अधिक प्राचीनसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंको प्रकाशित कर आपने भगवती सुरभारतीकी जो सेवा की है वह सराहनीय है और इसके लिए स्वतंत्र भारत आपका कृतज्ञ है।

विनीत
श्री रामचन्द्र झा

श्रावणी झूला
वि० सं० २००६

विषय-सूची

संज्ञाप्रकरण	...	...	१
सन्धिप्रकरण	...	...	९
स्वर-सन्धि	...	...	१०
व्यञ्जन-सन्धि	...	...	२१
विसर्ग-सन्धि	..	..	३०
कारक-विचार	...	...	३९
समास-विचार	...	...	४४
तिङन्त-विचार	...	...	५१
कृदन्त-विचार	...	...	५७
संख्याओंका गणनाक्रम	...	...	५८
गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन	...	...	६२
उपसर्ग-विचार	...	...	६६
अनुवादोपयोगिवाक्यवर्ग	...	...	६७
व्याकरणादिलक्षण	...	...	७३
विद्यार्थी-शिक्षासूत्र	...	...	७४



सन्धि-चन्द्रिका



संज्ञाप्रकरण

ओङ्कारं मुरलीधरं प्रभुवरं वृन्दावनाधीश्वरम्
भक्ताभीष्टफलप्रदं सुरवरैरासेव्यपादाम्बुजम्।
वन्दे रासविहारिणं निजजनानन्दप्रदं माधवं
श्रीराधादिसमस्तगोपवनितासंसेव्यमानं प्रभुम् ॥

अइउण् १। ऋऌक् २। एओङ् ३। ऐऔच् ४। हयवरट् ५। लण् ६। ञमङणनम् ७। झभञ् ८। घढधष् ९। जबगडदश् १०। खफछठथचटतव् ११। कपय् १२। शषसर् १३। हल् १४।

इन्हीं चतुर्दश (१४) सूत्रोंके आधार पर महर्षि पाणिनिने समस्त व्याकरणकी सभी बातें सरलरूपेण संक्षेप में कही हैं। ये चतुर्दश माहेश्वर सूत्र अण्, अक्, अच् इत्यादि संज्ञा (प्रत्याहार) सिद्धिके लिए हैं। (आचार्य पाणिनिने भगवान् शंकरके अतिशय प्रिय डमरूके शब्दोंसे इन सूत्रोंको उपलब्ध किया था।)

नोट:—आचार्य पाणिनि और कात्यायन दोनों पाटलिपुत्र (पटना) के महाप्राज्ञ श्री प० उपवर्षाचार्यजीके शिष्य थे। सतीर्थ्य होनेके कारण दोनोंमें परस्पर शाश्वतिक विरोध रहता था। एकदा कात्यायनसे परास्त होकर पाणिनि तीर्थराज प्रयागमें अक्षयवटके नीचे जहां सनकादि ऋषि गण तप कर रहे थे वहीं जाकर घोर तपस्या करने लगे। अनन्तर तपस्वियोंकी विकट तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान् शङ्करने ताण्डव नृत्य करते हुए उन लोगोंको दर्शन दिया और १४ बार अपना डमरू बजाकर तपस्वियोंका अभीष्ट सिद्ध किया। जैसा कि नन्दिकेश्वर विरचित 'काशिका' में लिखा है :—

'नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव-पञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

(विस्तृत समीक्षा 'इन्दुमती' टीका सहित 'लघुकौमुदी' की प्रस्तावना में देखो)

इन चतुर्दश सूत्रोंके अन्तिम वर्ण (ण्, क्, आदि) इत्संज्ञावाले हैं 'हलन्त्यम्' सूत्रसे इनकी इत्संज्ञा हो जाती है। हकारादि वर्णोंमें संमिलित जो अकार हैं वे केवल वर्णोच्चारण करनेके लिये हैं--इत्संज्ञाके लिये नहीं। 'लण्' सूत्रके मध्यमें (लकारोत्तरवर्ती) जो अकार है वह इत्संज्ञक है—उच्चारण मात्रके लिये नहीं। क्योंकि उससे 'र' प्रत्याहारकी सिद्धि होती है।

(१) हलन्त्यम्—

उपदेश अवस्थामें जो अन्त्य हल् (व्यञ्जन वर्ण) उनकी इत्संज्ञा होती है।

नोटः—आद्य (प्रथम) उच्चारणको 'उपदेश' कहते हैं।

व्याकरण शास्त्रके प्रवर्तक पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि मुनिका जो आद्योच्चारण है उसीका नाम 'उपदेश' है। कहा भी है—

धातु-सूत्र-गणोणादि-वाक्य-लिङ्गानुशासनम् ।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

(२) तस्य लोपः—

जिसकी इत्संज्ञा होती है उसका लोप हो जाता है।

नोट :—प्रसक्त (शास्त्रतः वा अर्थतः विद्यमान—प्राप्तोच्चारण) का जो अदर्शन (श्रवणाभाव) वह लोपसंज्ञक होता है—उस अभावको लोप कहते हैं।

(३) आदिरन्त्येन सहेता—

अन्त्य इत्संज्ञक वर्णके साथ उच्चारित आदि वर्ण अपने तथा मध्यवर्ती वर्णोंका भी बोधक हो।

नोटः—'अ इ उ ण्' सूत्रघटक 'अण्' प्रत्याहारमें अन्त्य इत्संज्ञक 'ण्' के सहित उच्चारित आदिवर्ण हुआ 'अ—ण्'। वह 'अण्' अपने बीचमें इ, उ, का तथा अपना अर्थात् 'अ' का भी संज्ञक हुआ (एवम् अन्यत्रापि)।

यथा 'अण्' प्रत्याहार अ, इ, उ वर्णोंका संज्ञा (बोधक) है, तथा अच्, हल् आदि प्रत्याहारों को भी जानना चाहिये। प्रत्याहार निम्न होते हैं।

शिवसूत्र–प्रत्याहार

स्यादेको ङञणवटैः, षेण द्वौ, त्रय इह कणमैश्च ।
चत्वारश्च चयाभ्यां, पञ्च रेफेण, शलाभ्यां षट् ॥

अक्—अ, इ, उ, ऋ, लृ ।

अच्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ

अञ्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ ।

अट्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र ।

अण्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, व, र, ल ।

अम्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न

अल्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ।

अश्—अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द ।

इक्—इ, उ, ऋ, लृ ।

इच्—इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ ।

इण्—इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल ।

उक्—उ, ऋ, लृ ।

एङ्—ए ओ ।

एच्—ए, ओ, ऐ, औ ।

ऐच्—ऐ औ ।

खय्—ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प ।

खर्—ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स ।

ङम्—ङ, ण, न ।

चय्—च, ट, त, क, प ।

चर्—च, ट, त, क, प, श, ष, स ।

छव्—छ, ठ, थ, च, ट, त ।

जश्—ज, ब, ग, ड, द ।

झय्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प

झर्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स ।

झल्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह ।

झश्—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द

झष्—झ, भ, घ, ढ, ध ।

बश्—ब, ग, ड, द ।

भष्—भ, घ, ढ, ध ।

मय्—म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प।

यञ्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ।

यण्—य, व, र, ल।

यम्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न।

यय्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प

यर्—य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स।

रल्—र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

वल्—व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

वश्—व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द

शर्—श, ष, स।

शल्—श, ष, स, ह।

हल्—ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह।

हश्—ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, द।

---

(४) ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः—

उकाल, ऊकाल, उ३काल (एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक) के समान उच्चारण काल हो जिसका वह 'अच्' यथाक्रमसे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञावाला हो।

नोटः—'मात्रा' कालको कहते हैं। मुर्गाका शब्द 'कु-कू-कु३' में एक दो, तीन मात्राओंका उच्चय क्रमिक स्पष्ट प्रतीत होता है, अतः उकार ही दृष्टान्तरूप में दिया गया है। ह्रस्वादि का लक्षण—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्॥

वह (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतसंज्ञक) प्रत्येक 'अच्' उदात्त, अनुदात्त, स्वरित धर्मविशेषसे तीन तीन प्रकारका होता है।

१. तालु आदि स्थानोंके ऊर्ध्व भाग में उच्चारित जो 'अच्' वह 'उदात्त' कहलाता है।

२. तालु आदि स्थानों के अधोभागमें उच्चारित जो 'अच्' वह 'अनुदात्त' कहलाता है।

३. उदात्त और अनुदात्त जिस स्वर में संमिलित हों उसे 'स्वरित' कहते हैं।
वह (उदात्त, अनुदात्त स्वरितभेदेन) नौ प्रकारका ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञक 'अच्' पुनः अनुनासिक और अननुनासिक भेदसे दो दो प्रकारका होता है।

(४) मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः—

मुख और नासिका (उभय) से जिस वर्णका उच्चारण हो वह अनुनासिक संज्ञक वर्ण कहलाता है।

नोटः- –इस प्रकारसे 'अ, इ, उ, ऋ' इन वर्णोंमें प्रत्येकके १८ भेद होते हैं। दीर्घ न होनेके कारण 'लृ' वर्णके (१८ भेद न होकर) १२ भेद होते हैं। एवं (ह्रस्व न होनेके कारण) 'एच्' वर्णोंकि प्रत्येकका भी (अठारह-अठारह भेद न होकर) १२ भेद होते हैं।

स्वरोंका अष्टादश भेदज्ञापक चक्र—

अ इ उ ऋ लृ	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
ह्रस्वभेद	दीर्घभेद	प्लुत भेद
१ ह्रस्व उदात्तानुनासिक	७ दीर्घ उदात्तानुनासिक	१३ प्लुत उदात्तानुनासिक
२ ,, उदात्ताननुनासिक	८ ,, उदात्ताननुनासिक	१४ ,, उदात्ताननुनासिक
३ ,, अनुदात्तानुनासिक	९ ,, अनुदात्तानुनासिक	१५ ,, अनुदात्तानुनासिक
४ ,, अनुदात्ताननुनासिक	१० ,, अनुदात्ताननुनासिक	१६ ,, अनुदात्ताननुनासिक
५ ,, स्वरितानुनासिक	११ ,, स्वरितानुनासिक	१७ ,, स्वरितानुनासिक
६ ,, स्वरिताननुनासिक	१२ ,, स्वरिताननुनासिक	१८ ,, स्वरिताननुनासिक

(५) तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्—

जिस वर्ण का जिस वर्ण के साथ तालु आदि स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न एक हो वह परस्पर सवर्ण संज्ञावाला होता है।

नोटः—ऋ-लृ वर्णकी (भिन्न स्थान होनेपर भी) परस्पर सवर्णसंज्ञा होती है।

स्थानविचार—

१. अ—अकार, कु—कवर्ग, ह—और विसर्ग का उच्चारणस्थान कंठ है—अतः इनको कण्ठ्य वर्ण कहते हैं। २. इ—इकार, चु—चवर्ग, 'य' और 'श' का उच्चारणस्थान 'तालु' है—अतः इनको तालव्य वर्ण कहते हैं। ३. ऋ—ऋकार, टु—टवर्ग, 'र' और 'ष' का उच्चारणस्थान 'मूर्धा है—अतः इनको मूर्धन्य वर्ण कहते हैं। ४. लृ—लृकार, तु—तवर्ग, 'ल' और 'स' का उच्चारणस्थान 'दन्त' है—अतः इनको दन्त्य वर्ण कहते हैं। ५. उ—उकार, पु—पवर्ग और उपध्मानीय (≍प≍फ) का उच्चारण स्थान 'ओष्ठ' है—अतः इनको ओष्ठ्य वर्ण कहते हैं। ६. 'ञ—म—ङ—ण—न' का उच्चारणस्थान 'नासिका' तथा 'कण्ठ—तालु—मूर्धा—दन्त—ओष्ठ' भी हैं—अतः इनको नासिका तथा कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य वर्ण भी कहते हैं। ७. एकार—ऐकारका उच्चारणस्थान कंठ और तालु है—अतः इनको कंठ्य, तालव्य दोनों कहते हैं। ८. ओकार—औकारका उच्चारणस्थान कंठ और ओष्ठ है—अतः इनको 'कंठ्योष्ठ्य' वर्ण कहते हैं। ९. वकार का उच्चारणस्थान दन्त तथा ओष्ठ है—अतः इसको 'दन्त्योष्ठ्य' वर्ण कहते हैं। १०. ≍क≍ख का उच्चारणस्थान जीभका मूल (जड़ भाग) है—अतः इनको जिह्वामूलीय कहते हैं। ११. अनुस्वार का उच्चारणस्थान नासिका है।

वर्णोद्भवस्थान ज्ञापक चक्र—

कंठ	तालु	मूर्धा	दन्त	ओष्ठ	नासिका	कं. ता.	कं. ओ	दं. ओ.	जि. मू.	नासिका
अ	इ	ऋ	लृ	उ	ञ	ए	ओ	व	≍क	
क	च	ट	त	प	म	ऐ	औ			ं
ख	छ	ठ	थ	फ	ङ				≍ख	
ग	ज	ड	द	ब	ण					अनुस्वार
घ	झ	ढ	ध	भ	न					
ङ	ञ	ण	न	म						ं
ह	य	र	ल	≍प						
ः	श	ष	स	≍फ						

प्रयत्नविचार—

यत्नो द्विधा—यत्न (प्रयत्न) दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तर और बाह्य।

नोटः—"प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः" अर्थात् वर्णोच्चारणके पूर्व हृदयमें जो यत्न

करना पड़ता है, उसी प्रयत्नको **'आभ्यन्तरप्रयत्न'** कहते हैं। इसका अनुभव उच्चारण करने वालेको ही होता है। दूसरा प्रयत्न मुखसे वर्ण निकलते समय होता है। इसका अनुभव सुनने वालेको भी होता है, अतः वह **'बाह्यप्रयत्न'** कहा जाता है। इसका उपयोग सवर्णसंज्ञामें नहीं होता, किन्तु आन्तरतम्य-परीक्षा अर्थात् कई वर्णोंमें परस्पर अत्यन्त समानताका अन्वेषण करनेके समय इसकी आवश्यकता पड़ती है।

पहला—**'आभ्यन्तर'** प्रयत्न, पांच प्रकारका है १. **स्पृष्ट, २. ईषत्स्पृष्ट, ३. ईषद्विवृत, ४. विवृत** और ५. संवृत।

इन पांचोंमें **स्पृष्ट प्रयत्न** (स्पर्शका) 'क' से 'म' पर्यन्त वर्णोंका है। **ईष-त्स्पृष्ट**–प्रयत्न (अन्तःस्थोंका) य व र ल वर्णोंका है। **ईषद्विवृत**–प्रयत्न (ऊष्मा-का) शल् वर्णोंका है। **विवृत**–प्रयत्न (स्वरका) अच्का है, **संवृत**–प्रयत्न ह्रस्व अकारका प्रयोगावस्थामें–परिनिष्ठित सिद्ध रूपमें, होता है। किन्तु प्रक्रिया-दशा (साधनिकावस्था) में विवृत ही रहता है।

दूसरा **बाह्यप्रयत्न'** ग्यारह प्रकारके होते हैं–**१. विवार, २. संवार,** ३. श्वास, ४. **नाद, ५. घोष, ६ अघोष**, ७. **अल्पप्राण, ८. महाप्राण, ९. उदात्त, १०. अनुदात्त और ११. स्वरित**।

नोटः—जिन वर्णोंका उच्चारण करते समय कंठका विकाश हो उनको 'विवार' तदतिरिक्तको 'संवार' एवं जिन वर्णोंका उच्चारण करते समय श्वास चलता हो उनको 'श्वास' जिनका उच्चारण नादसे हो उनको 'नाद' तथा जिन वर्णोंका उच्चारण करनेपर गूंज होता हो उनको 'घोष' तदतिरिक्तको 'अघोष' एवं जिनके उच्चारण करनेमें प्राणवायुका अल्प उपयोग हो उन्हें 'अल्पप्राण' और अधिक उपयोग हो उन्हें महाप्राण कहते हैं।

१. **खर्**—प्रत्याहारका विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है। १. **हश्**—प्रत्याहारका संवार, नाद और घोष प्रयत्न है। ३. वर्गोंके प्रथम (क च ट त प) तृतीय (ग ज ड द ब), पंचम (ङ ञ ण न म) तथा यण् (य व र ल) का अल्पप्राण प्रयत्न है। एवं वर्गोंके द्वितीय (ख छ ठ थ फ), चतुर्थ (घ झ ढ ध भ) तथा 'शल्' (श ष स ह) का महाप्राण प्रयत्न है। ४. 'क' से 'म' पर्यन्त (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग) वर्ण स्पर्श कहलाते हैं।

नोटः—जीभके अग्र (चोटी) उपाग्र (अग्रके समीपस्थ प्रदेश), मध्य

(बीच) और मूल (आदि) भागद्वारा कण्ठ, तालु प्रभृति स्थानोंका स्पर्श करके कवर्गादि वर्णोका उच्चारण होता है अतः इनका नाम स्पर्श वर्ण है।

५ यण्—(य व र ल) अन्तःस्थ कहलाते हैं।

नोट:—अन्तःस्थ का मतलब है बीचवाला। 'य व र ल' स्वर और व्यंजन के बीचके हैं।

६. शल्—श ष स ह ऊष्मा कहलाते हैं–जिन वर्णोंके उच्चारणमें गर्म वायु का प्राधान्य हो उसे ऊष्म वर्ण कहते हैं।

७. अच्—(अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) स्वर कहलाते हैं। ≍क≍ख—यहाँ ककार, खकारसे पूर्व विसर्गार्ध (≍) के समान जो ध्वनि है वह जिह्वामूलीय है। ≍प≍फ—यहाँ पर पकार, फकारसे पूर्व विसर्गार्धके समान जो ध्वनि है वह उपध्मानीय है। अं अः—यहाँ पर अकारसे पर जो ध्वनि है वह यथाक्रमसे अनुस्वार, विसर्ग वाचक है।

नोट:—'न्' और 'म्' के स्थानमें अनुस्वार तथा 'रेफ' के स्थानमें विसर्ग होता है अतः अनुस्वार–विसर्ग पृथक् वर्णोमें नहीं गिने जाते।

आभ्यन्तर और बाह्यप्रयत्न ज्ञापक चक्र—

आभ्यन्तर-प्रयत्न	स्पृष्ट			ईषत्स्पृष्ट	ईषद्विवृत		विवृत	संवृत
संज्ञा	स्पर्श			अन्तःस्थ	ऊष्मा		स्वर उदात्त, अनुदात्त, स्वरित	
व्यञ्जन, स्वर	क ख प फ च छ ट ठ त थ	ग ङ ब म ज ञ ड ण द न	घ भ झ ढ ध	य व र ल	श ष स	ह	अ इ ए उदात्त, अनुदात्त, स्वरित	प्रयोग में ह्रस्व अ.
बाह्यप्रयत्न	अ.प्रा म.प्रा विवार श्वास अघोष	अल्प.प्रा. संवार नाद घोष	म.प्रा. संवार नाद घोष	अल्प. संवार नाद घोष	म.प्रा. विवार श्वास अघोष	म.प्रा. सं. ना घो.	अल्पप्राण संवार नाद घोष	अल्प. संवार नाद घोष

(६) अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः

जो विधान किया जाय वह प्रत्यय और तद्भिन्न अप्रत्यय कहलाता है। एवं च सूत्रार्थ यह हुआ कि —जिसका विधान न किया गया हो ऐसा अण् (प्रत्याहार) और उदित् (कु चु टु तु पु) अपने सवर्णके बोधक हों। फल यह हुआ कि 'अस्य च्वौ' ह्रस्व अकारसे दीर्घ आकारका भी ग्रहण हुआ और उससे 'गाङ्गी' भवतिमें 'गङ्गा' के आकारका ईत्वविधान सफल हुआ।

नोट:—केवल इसी (अणुदित्) सूत्रमें 'अण्' प्रत्याहार पर ('लण्' सूत्रस्थ) णकारसे समझना चाहिये। तथा च हरिकारिका—

परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाण्ग्रहा मताः।
ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु॥

सन्धिप्रकरण

दो वर्ण परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती होनेसे जो मिल जाते हैं, उस मिलनको 'सन्धि' कहते हैं।

सन्धि ३ प्रकारकी होती है। **१. स्वर-सन्धि, २ व्यञ्जन-सन्धि और ३. विसर्ग-सन्धि।**

सन्धिकी व्यवस्था—

'सन्धिरेकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥'

एक पदमें, धातु और उपसर्गकी तथा समासमें नित्य (निश्चितरूपेण) सन्धि होती है, किन्तु वाक्यमें विवक्षाकी अपेक्षा रखती है अर्थात् वाक्यमें वक्ताकी इच्छा पर सन्धि होती है।

---

 १. 'पद' 'सुप्तिङन्तं पदम्' 'सुप्' अथवा तिङ् प्रत्यय जिसके अन्तमें हो वह पद कहलाता है। (भ्याम् आदि हलादि विभक्तिके पूर्व जो हो वह भी 'पद' कहा जाता है)।

२ 'धातु' भूवादयो धातवः' जिन 'भू' प्रभृति शब्दोंसे क्रियाका ज्ञान हो हो उन्हें धातु कहते हैं।

३ 'समास' 'उपसर्गाः क्रियायोगे'—क्रियाके साथ योग होनेपर—प्र-परा-अप सम्-अनु-अव-निस्-निर्-दुस्-दुर्-वि-आङ्-नि-अधि-अपि-अति-सु-उत्-अभि-प्रति-परि-उ शब्दोंको उपसर्ग कहते हैं। ४. 'समास'दो अथवा उससे अधिक शब्दोंके मेलका नाम 'समास' है।

उदाहरण—

१. एक पदमें—ने + अयनम् = **नयनम्** । भो + अति = **भवति** ।

२. धातु और उपसर्ग में—अधि + आगच्छति = **अध्यागच्छति** ।

३. समासमें—राज्ञः + अश्वः = **राजाश्वः** ।

४. वाक्यमें—द्वाविंशे एव वर्षे **इन्दुमती** अधिजगाम नाकम् ।

स्वर सन्धि

स्वर वर्णको स्वर वर्ण के साथ जो सन्धि होती है उसे 'स्वर-सन्धि' कहते हैं ?

(१) अकः सवर्णे दीर्घः

'अक्' प्रत्याहार घटक वर्णसे अव्यवहित परमें कोई भी सवर्ण (सजातीय) 'अच्' प्रत्याहार घटक वर्ण हो तो दोनो मिलकर दीर्घ हो जाता है* (यह सूत्र गुण और यण् का बाधक है)।

उदाहरण—

१. अ + अ = आ—दैत्य + अरिः = **दैत्यारिः** । आ + आ = आ—विद्या + आलयः = **विद्यालयः** । अ + आ = आ - कमल + आकरः = **कमलाकरः** । आ + अ = आ—श्रद्धा + अस्ति = **श्रद्धास्ति** ।

२. इ + इ = ई—फणि + इन्द्रः = **फणीन्द्रः** । ई + ई = ई—श्री + ईशः = **श्रीशः** । ई + इ = ई—महती + इच्छा = **महतीच्छा** । इ + ई = ई—कवि + ईश्वरः = **कवीश्वरः** ।

३. उ + उ = ऊ—भानु + उदयः = **भानूदयः** । ऊ + ऊ = ऊ—भू + ऊर्ध्वम् = **भूर्ध्वम्** । ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सवः = **वधूत्सवः** । उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्मिः = **लघूर्मिः** ।

४. ऋ + ऋ = ॠ—होतृ + ऋकारः = **होतॄकारः** । ऋ + ऌ = ऋ-होतृ + ऌकारः = होतॄकारः ।

---

* **'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्'**--शकन्धु आदिके विषयमें जिस प्रकार उनकी सिद्धि हो वैसा पररूप करना चाहिये । इसलिये-शक + अन्धुः = शकन्धुः, कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः । इन स्थानों में दीर्घ नहीं होता ।

शकन्ध्वादि 'आकृतिगण' है—'आकृत्या = स्वरूपेण, कार्यदर्शनेन, गण्यते = परिचीयते' इति 'आकृतिगणः' । अत एव—मृत + अण्डः = मृतण्डः सम + अर्थः = समर्थं इत्यादिकी भी सिद्धि होती है ।

(२) आद्गुणः—

अवर्णसे पर 'अच्' ❀ (इ—उ—ऋ—लृ वर्ण) हो तो पूर्व-परके स्थानमें गुण एक आदेश होता है।

उदाहरण—

१. अ + इ = ए — उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः । अ + ई = ए — देव + ईशः = **देवेशः** । **आ + इ** = ए-महा + इन्द्र = **महेन्द्रः** । **आ + ई** = ए-रमा + ईशः = **रमेशः** ।

२. अ + उ = ओ—सूर्य + उदयः = सूर्योदयः । अ + ऊ = ओ — प्रासाद + ऊर्ध्वम् = **प्रासादोर्ध्वम्** । **आ + उ** = ओ—गङ्गा + उदकम् = **गङ्गोदकम्** **आ + ऊ** = ओ—दया + ऊनः = **दयोनः** ।

३. अ + ऋ = अर्—देव + ऋषिः = **देवर्षिः** । अ + ऋ = अर्— उप + ऋकारीयति = **उपर्कारीयति** । आ + ऋ = अर्— ब्रह्मा + ऋषि = **ब्रह्मर्षिः** । **आ** + ऋ = अर्—देवता + ऋकारः = **देवतर्कारः** ।

४. अ + लृ = अल्—प्लुत + लृकारः = **प्लुतल्कारः** । **आ** + लृ = अल् आ + लृकारः = **अल्कारः** ।

नोटः—विशेष रूपसे कहे गये कार्योंके प्रति सामान्य रूपसे कहे गये कार्य बाधित हो जाते हैं। यथा-(गुण बाधक वार्तिक)—

(क) **अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्** —'अक्ष' शब्दसे पर 'ऊहिनी' शब्द हो तो पूर्व परके स्थानमें (अ + ऊ मिलकर) वृद्धि एकादेश (औ) होता है।

यथा—अक्ष + ऊहिनी—**अक्षौहिणी** (परिणाम विशेष विशिष्ट सेना ❀)

(ख) **स्वादीरेरिणोः**—स्व शब्दसे पर 'ईर' वा 'ईरिन्' शब्द रहे तो अ ई मिलकर वृद्धि ऐ होता है।

यथा—स्व + ईरः = **स्वैरः** (स्वाधीनता) स्व + ईरिन् = **स्वैरी** (स्वच्छन्दचारी)

(ग) '**प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु**—प्र उपसर्गके बाद ऊह, ऊढ, ऊढि और एष

❀ हल + ईषा = हलीषा, लाङ्गल + ईषा = लाङ्गलीषा, इन जगहोंमें गुण न होकर "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" से पररूप हो जाता है।

❀ जिस सेनामें २१८७०हाथी हों और इतने ही रथ हों तथा ६५६१०घोड़े हों, १०९३५०पैदल चलनेवाले हों उन विशिष्टसेनाओंका नाम 'अक्षौहिणी' है प्रमाणअक्षौहिण्याःप्रमाणंतुखाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः।रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैःपञ्चघ्नैश्चपदातिभिःमहाभारत।

एष्य शब्द रहे तो अ+ऊ मिलकर 'औ' तथा अ+ए मिलकर वृद्धि 'ऐ' होता है।

यथा—प्र+ऊहः=प्रौहः (उत्तम तर्क)। प्र+ऊढः=प्रौढः (विचारवान, निपुण) प्र+ऊढिः=प्रौढिः (प्रौढता)॥प्र+एषः=प्रैषः=(प्रेरणा)। प्र+एष्यः=प्रैष्यः (नौकर)।

(घ) 'ऋते च तृतीयासमासे'—अवर्ण से पर ऋत शब्द हो तो(तृतीया समासमें) अवर्ण और ऋवर्णके स्थान में वृद्धि 'आर्' होता है।

यथा—(सुखेन ऋतः) सुख+ऋतः=सुखार्तः।

(ङ) 'प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे'—प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन ऋण और दश शब्दोंसे पर यदि 'ऋण' शब्द हो तो पूर्व-पर (अ+ऋ) मिलकर वृद्धि 'आर्' होता है।

यथा—प्र+ऋणम्=प्रार्णम्। वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम्। कम्बल+ऋणम्=कम्बलार्णम्। वसन+ऋणम्=वसनार्णम्। ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् (ऋण चुकानेके लिए लिया हुआ दूसरा ऋण)। दश+ऋणः=दशार्णः। (दश ऋणानि=दुर्गभूमयः यस्मिन् प्रदेशे सः। इस प्रयोगमें ऋण शब्द का दुर्गभूमि अर्थ है। विन्ध्यप्रदेशका नाम 'दशार्ण' प्रसिद्ध है।)

(३) वृद्धिरेचि--

अवर्णसे पर 'एच्' हो तो पूर्व-परके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो *।

नोटः—'वृद्धिरादैच्' इस सूत्रसे आ और ऐच्की वृद्धिसंज्ञा होती है। एवं च आ-ऐ-औ इन वृद्धिसंज्ञक वर्णोंमें अतिशय साहश्यात् अकार-एकारके स्थानमें पूर्व पर मिलकर 'ऐ' और अकार-ओकारके स्थानमें पूर्व-पर मिलकर 'औ' हो ताहै।

उदाहरण—

१. अ+ए=ऐ—कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम्। अ+ऐ=ऐ—

॥प्र+एषः तथा प्र+एष्यः में 'एङि पररूपम्' सूत्र ६ से पररूप प्राप्त था।

*"निरवकाशो विधिरपवादः"—जिस विधिका अवकाश कहीं नहीं हो उसे 'अपवाद' कहते है। 'वृद्धिरेचि' की जहाँ प्राप्ति होती है, वहाँ आद्गुणः' अवश्य प्राप्त होता है। अतः 'वृद्धिरेचि' अपवाद हुआ और अपवाद विधि बलवान् होती है इसलिये जहाँ वृद्धिकी प्राप्ति होगी वहाँ आद्गुण नहीं लगेगा।

देव + ऐश्वर्यम् = **देवैश्वर्यम्** । **अ + ओ** = औ—दिव + ओकसः = **दिवौकसः** । **अ + औ** = औ—कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = **कृष्णौत्कण्ठ्यम्** ।

२. **आ + ए** = ऐ—सदा + एव = सदैव । **आ + ऐ** = ऐ—महा + ऐरावतः = **महैरावतः** । **आ + ओ** = औ—गङ्गा + ओघः = **गङ्गौघः** । **आ + औ** = औ—महा + औचित्यम् = **महौचित्यम्** ।

(४) एत्येधत्यूठ्सु—

अवर्णसे पर एजादि इण् धातु (एति), और एध् धातु (एधते) तथा ऊठ् रहे तो अ + ए मिलकर 'ऐ' और अ + ऊ मिलकर वृद्धि 'औ' होता है। यह सूत्र पररूप और गुण का बाधक है।

उदाहरण—

१. उप + एति = **उपैति** ।

२. उप + एधते = **उपैधते** ।

३. प्रष्ठ + ऊहः = **प्रष्ठौहः** (यहां 'वाह्' को "वाह ऊठ्" सूत्रसे 'ऊठ्' आदेश होनेसे 'ऊहः' बनता है) ।

(५) उपसर्गादृति धातौ—

अवर्णान्त उपसर्गसे पर ऋकारादि धातु हो तो पूर्व-परके स्थानमें वृद्धि 'आर्' होता है। (यह सूत्र गुणका बाधक है)

उदाहरण—

१. प्र + ऋच्छति = **प्रार्च्छति** । उप + ऋच्छति = **उपार्च्छति** । प्र + ऋणोति = **प्रार्णोति** । प्र + ऋच्छन् = **प्रार्च्छन्** । उप + ऋच्छन् = **उपार्च्छन्** ।

(६) एङि पररूपम्—

अवर्णान्त उपसर्गसे पर एङादि धातु हो तो पूर्व-परके स्थानमें पररूप एकादेश हो अर्थात् पूर्व वर्ण (अ) का दर्शनाभाव हो जाय। (यह सूत्र वृद्धिका बाधक है)

उदाहरण—

१. प्र + एजते = **प्रेजते** ।

२. उप + ओषति = **उपोषति** ।

(७) ओमाङोश्च—

अवर्णसे पर 'ओम्' अथवा 'आङ्' हो तो पूर्व-परके स्थानमें पररूप एकादेश हो। (यह सूत्र वृद्धि का बाधक है)

उदाहरण—

शिवाय + ओं नमः = शिवायों नमः।

(आ + इहि = एहि) शिव + एहि = शिवेहि।

(८) इको यणचि—

इक् प्रत्याहारके बाद यदि अच् प्रत्याहार हो तो इक् प्रत्याहारके स्थान में यण् प्रत्याहार होता है।

नोट :—(क) इवर्णके बाद इवर्णभिन्न स्वरवर्ण रहनेपर इवर्णके स्थानमें 'य्' होता है।

(ख) उवर्णके बाद उवर्णभिन्न स्वरवर्ण परे रहने पर उवर्णके स्थानमें 'व्' होता है।

(ग) ऋवर्णके बाद ऋ-लृभिन्न स्वरवर्ण रहनेपर ऋवर्णके स्थानमें 'र्' होता है और र् पूर्व वर्णसे युक्त हो जाता है।

(घ) लृवर्णके बाद लृ-ऋभिन्न स्वरवर्ण रहनेपर लृके स्थानमें' 'ल्' होता है और ल् पूर्व वर्णसे युक्त हो जाता है।

उदाहरण—

१. इ + अ = य्—अति + अन्नम् = अत्यन्नम्। इ + आ = य्—दधि + आनय = दध्यानय। ई + आ = य्—देवी + अर्चा = देव्यर्चा। ई + आ = य्—देवी + आगच्छति = देव्यागच्छति। इ + उ = य्—प्रति + उपकारः = प्रत्युपकारः। इ + ऊ = य्—अति ऊचुः = अत्यूचुः। ई + उ = य्—सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः। ई + ऊ = य्—सखी + ऊरुः = सख्यूरुः। इ + ऋ = य्—अभि + ऋकारः = अभ्यृकारः। ई + ऋ = य्—देवी + ऋषभः = देव्यृषभः। ई + ॠ = य्-देवी + ॠकारीयति = देव्यॄकारीयति। इ + लृ = य्-अति + लृकारः = अत्यॢकारः॥ इ + ए = य्—प्रति + एकम् = प्रत्येकम्। इ + ऐ = य्—मति + ऐक्यम् =

॥ ऋकार और लृकारघटित प्रयोगोंका प्रचुर व्यवहार लोक में नहीं होता। पा० महाभाष्य आदि ग्रन्थोंमें ऐसे अधिक प्रयोग देखे जाते हैं।

मत्यैक्यम्। ई+ए=य्-गौरी+एवम्=गौर्येवम्। ई+ऐ=य्-लक्ष्मी+ऐश्वर्यम्=लक्ष्म्यैश्वर्यम्। इ+ओ=य्-दधि+ओदनः=दध्योदनः। इ+औ=य्—अति+औदास्यम्=अत्यौदास्यम्। ई+ओ=य्—देवी+ओजः=देव्योजः। ई+औ=य्-सखी+औपम्यम्=सख्यौपम्यम्।

२ उ+अ=व्-वस्तु+अत्र=वस्त्वत्र। उ+आ=व्-लघु+आचारः=लघ्वाचारः। ऊ+अ=व्=वधू+अन्वेषणम्=वध्वन्वेषणम्। ऊ+आ=व्-वधू+आगमनम्=वध्वागमनम्। उ+इ=व्-लघु+इन्दुः=लघ्विन्दुः। उ+ई=व्-मधु+ईशः=मध्वीशः। ऊ+इ=व्—तनू+इन्द्रः=तन्विन्द्रः। ऊ+ई=व्—वधू+ईक्षणाम्=वध्वीक्षणाम्। उ+ऋ=व्-लघु+ऋणम्=लघ्वृणम्। उ+ॠ=व्—सु+ॠकारः=स्वॄकारः। उ+ऌ=व्—मधु+ऌतः=मध्वॢतः। उ+ए=व्—अनु+एषणम्=अन्वेषणम्। उ+ऐ=व्-साधु+ऐक्यम्=साध्वैक्यम्। ऊ+ए=व्-वधू+एका=वध्वेका। ऊ+ऐ=व्—तनू+ऐश्वर्यम्=तन्वैश्वर्यम्। उ+ओ=व्=साधु+ओकः=साध्वोकः। उ+औ=व्-लघु+औदार्यम्=लघ्वौदार्यम्। ऊ+ओ=व्—दृन्भू+ओषधिः=दृन्भ्वोषधिः। ऊ+औ=व्—करभू+औडलोमिः=करभ्वौडलोमिः।

३. ऋ+अ=र्—पितृ+अर्थम्=पित्रर्थम्। ऋ+आ=र्—मातृ+आकृतिः=मात्राकृतिः। ॠ+अ=र्—कॄ+अर्थम्=क्रर्थम्। ॠ+आ=र्-कॄ+आकृतिः=क्राकृतिः। ऋ+इ=र्—मातृ+इच्छा=मात्रिच्छा। ऋ+ई=र्—पितृ+ईहितम्=पित्रीहितम्। ऋ+उ=र्-पितृ+उदकम्=पित्रुदकम्। ऋ+ऊ=र्—भ्रातृ+ऊनः=भ्रात्रूनः। ऋ+ए=र्-धातृ+एवम्=धात्रेवम्। ऋ+ऐ=र्—भ्रातृ+ऐश्वर्यम्=भ्रात्रैश्वर्यम्। ऋ+ओ=र्—जामातृ+ओकः=जामात्रोकः। ऋ+औ=र्—पितृ+औदार्यम्=पित्रौदार्यम्।

४. ऌ+अ=ल्—ऌ+अर्थम्=लर्थम्। ऌ+आ=ल्—ऌ+आकृतिः=लाकृतिः।

(९) एचोऽयवायावः—

'एच्' प्रत्याहारके बाद 'अच्' प्रत्याहार रहे तो एच्—(ए ओ ऐ औ) के स्थानमें, क्रमसे अय्, अव्, आय्, आव् आदेश हों।

उदाहरण—

१. ए+अ=अय्—ने+अनम्=नयनम् । ए+आ=अय्—रमे+आ=रमया । ए+इ=अय् शे+इतः=शयितः । ए+ई=अय्–शे+ईत=शयीत । ए+उ=अय्—मृगे+उः=मृगयुः । ए+ऊ=अय्–मे+ऊरः=मयूरः । ए+ऋ=अय्—गृहे+ऋत्विक्=गृहयृत्विक् । ए+ऌ=अय्—वने+ऌतकः=वनयऌतकः । ए+ए=अय्—हरे+ए=हरये । ए+ऐ=अय्—शे+ऐ=शयै । ए+ओ=अय्—वने+ओः=वनयोः । ए+औ=अय्—से+औ=सयौ ।

२. ऐ+अ=आय्—नै+अकः=नायकः । ऐ+आ=आय्—रै+आम्=रायाम् । ऐ+इ=आय्—शै+इतः=शायितः । ऐ+ई=आय्—रै+ईशः=रायीशः । ऐ+उ=आय्–ऐ+उः=आयुः । ऐ+ए=आय्–रै+ए=राये । ऐ+ओ=आय्—रै+ओः=रायोः । ऐ+औ=आय् सखै+औ=सखायौ ।

३. ओ+अ=अव्—भो+अनम्=भवनम् । ओ+आ=अव्—गो+आम्=गवाम् । ओ+इ=अव् - गो+इ=गवि । ओ+ई=अव्—और्णो+ईत्=और्णवीत् । ओ+उ=अव्— अजुहो+उ=अजुहवुः । ओ+ए=अव्–गो+ए=गवे । ओ+ओ=अव्—गो+ओः=गवोः ।

४. औ+अ=आव्–पौ+अकः=पावकः । औ+आ=आव्–ग्लौ+आ=ग्लावा । औ+इ=आव्–अभौ+इ=अभावि । औ+उ=आव्–अदादौ+उच्यन्ताम्=अदादावुच्यन्ताम् । औ+ऊ=आव्–भ्वादौ+ऊचुः=भ्वादावूचुः । औ+ए=व्–ग्लौ+ए=ग्लावे । औ+ओ=आव्–नौ+ओः=नावोः । औ+औ=आव्—गौ+औ=गावौ ।

(१०) लोपः शाकल्यस्य—

अवर्णपूर्वक पदान्त यकार–वकारका लोप हो, विकल्पसे अश् के परे (यहां लोप होने पर सन्धि नहीं होती है ।)

उदाहरण—

१. हरे+इह=हर इह—हरयिह ।

२. विष्णो+इह=विष्ण इह–विष्णविह ।

३. देव्यै + अर्पय = देव्या अर्पय देव्यायर्पय ।

४. रवौ + अस्तङ्गते = रवा अस्तङ्गते रवावस्तङ्गते ।

(११) एङः पदान्तादति--

पदके अन्तमें स्थित 'एङ्' के बाद 'अत्' (ह्रस्व अकार) रहे तो अकारका पूर्वरूप होता है अर्थात् श्रवणाभाव हो जाता है ।

उदाहरण—

१. हरे + अव = हरेव । मुने + अत्र = मुनेत्र ।

२. विष्णो + अव = विष्णोव । गुरो + अव + गुरोव ।

(१२) अवङ् स्फोटायनस्य—

अच् परे रहने पर पदान्त विषयमें एङन्त गोशब्दको अवङ् आदेश हो, विकल्पसे ।

(१३) सर्वत्र विभाषा गोः—

अत् (ह्रस्व अकार) परे रहने पर पदान्त एङन्त गोशब्द (गोशब्दावयव ओकार) को विकल्पसे प्रकृतिभाव हो अर्थात् सन्धि नहीं हो ।

नोटः—अच् परे रहने पर पदान्तमें स्थित गोशब्दके ओकारको १२ वाँ सूत्रसे 'अवङ्' आदेश होकर १ ला सूत्रसे सवर्ण दीर्घ हो जाता है अथवा १३वाँ सूत्रसे प्रकृतिभाव होता है (ज्यों का त्यों रह जाता है) अथवा ११ वाँ सूत्रसे अकारका पूर्वरूप होजाता है ।

उदाहरण—

गो + अग्रम् = गवाग्रम्–गो अग्रम्–गोग्रम् ।

(१४) इन्द्रे च—

इन्द्र शब्द परे रहने पर गो शब्दके ओकारको नित्य ही, 'अवङ्' होता है (अवादेश होने पर अ–इ मिलकर गुण ए होजाता है ।)

उदाहरण—

गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः ।

(स्वरसन्धि–निषेधप्रकरण)

(१) दूराद्धूते च—

दूरसे सम्बोधन (नामोच्चारणकर पुकारने) में प्रयुक्त वाक्यको टि को विकल्प से प्लुत हो (अर्थात् कोई भी सन्धि नहीं हो केवल प्लुतका चिन्ह (३) रह जाय)

उदाहरण—

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति । भो मित्र (३) इन्दुमती त्वां नमस्करोति ।

(२) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्—

स्वर वर्ण परे रहनेपर द्विवचन में निष्पन्न—ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पदकी सन्धि नहीं होती ।

उदाहरण—

१. हरी + एतौ = हरी एतौ । कवी + आगच्छतः = कवी आगच्छतः ।

२. विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ । ऋतू + अतीतौ = ऋतू अतीतौ ।

गङ्गे + अमू = गङ्गे अमू । बालिके + उच्चलतः = बालिके उच्चलतः ।

(३) अदसो मात्—

स्वरवर्ण परमें रहने पर अदस् शब्द निष्पन्न 'अमी' और 'अमू' पदकी सन्धि नहीं होती ।

उदाहरण—

१. अमी + ईशाः = अमी ईशाः । अमी + अश्नन्ति = अमी अश्नन्ति ।

२. रामकृष्णावमू + आसाते = रामकृष्णावमू आसाते । अमू + अत्तः = अमू अत्तः ।

(४) ओत्—

स्वरवर्ण परे रहनेपर ओकारान्त निपात । (अव्यय) की सन्धि नहीं होती ।

उदाहरण—

अहो + ईशाः = अहो ईशाः । अहो + आश्चर्यम् = अहो आश्चर्यम् ।

(५) निपात एकाजनाङ्—

एक स्वर मात्र निपात (अव्यय) की सन्धि नहीं होती ।

उदाहरण—

अ × अच्युतः = अ अच्युतः। आ × एवं किलतत् = आ एवं किल तत्।
इ × इन्द्रः = इ इन्द्रः। उ × उमेशः = उ उमेशः।

नोटः—ईषत् (अल्प) अर्थ समझने से एवं क्रिया के साथ योग होनेसे तथा मर्यादा और अभिविधि अर्थ में एक स्वर मात्र निपात होते हुए भी आङ् (आ) की सन्धि होती है। इसी लिए उपर्युक्त सूत्रमें 'अनाङ्' (आङ्वर्जित) कहा गयाहै।

उदाहरण—

१. ईषत् अर्थमें—आ × उष्णम् = ओष्णम् (थोड़ा गर्म)
२. क्रिया के योगमें—आ × इहि = एहि। (आओ)
३. मर्यादा (सीमा) अर्थमें—आ × अम्बुधेः = आम्बुधेः (समुद्रतक)
४. अभिविधि (मर्यादाका प्रभेद'व्याप्ति' अर्थमें—आ × एकदेशात् = ऐकदेशात् (एकदेश व्यापकर)

सन्धि करो—

१. त्रिपुर × अरिः। महा + आलयः। अभि + इष्टम्। प्रति + ईक्षणम्। भानु + उदयः। तनू + उर्ध्वम्। पितृ + ऋणम्।
२. देव + इन्द्रः। गण + ईशः। यथा + इति। उमा + ईशः। हित + उपदेशः। एक + ऊनविंशतिः। गङ्गा × उत्तरम्। महा + ऋषः। शुभ्र + ऋषिः। ह्रस्व + ऌकारः।
३. जन + एकता। महा + ऐश्वर्यम्। जल + ओघः। सुखस्य + औपयिकम्।
४. अव + एति। प्र + एधते। विश्व + ऊहः।
५. प्र × ऋणोति। उप + ऋच्छन्।
६. अव + एजते। उप + एजते। प्र + ओषति।
७. का + ओम्। या + ओम्। अद्य + ओढा। कदा + ओढा। अव + एहि। अद्य + अर्य्यात्।
८. दधि + अत्र। वस्तु + इदम्। वधू + आननम्। सुधी + ऊहितम्। मातृ + अर्थम्। गम्लृ + अर्थम्।
९. चे + अनम्। लो + अनम्। चै + अकः। स्तौ + अकः। मुने + ए।

गुरो + ए । के + एते । अचै + इ । अलौ + इ । गुरौ + उत्कः । हरौ + औत्सुक्यम् । व्ये + एते ।

१०. के + आसते । अस्मै + उद्धर । श्रियै + उद्यतः । द्वौ + अत्र । असौ + आदित्यः । हरे + इह । विष्णो + इह ।

११. वायो + अत्र । कवे + अव । विभो + अव । हरे + अत्र ।

१२. गो + अजिनम् । गो + ईशः । गो + उष्ट्रम् । गो + ओदनम् । गो + अक्षः गो + अञ्ची । गो + अक्षु । गो + अग् ।

१३. गो + अश्वम् । गो + अजिनम् । गो + अञ्चा । गो + अक्षु ।

विच्छेद करो—

१. शशाङ्कः । रत्नाकरः । लतान्तः । दधीव । लक्ष्मीशः । महीन्द्रः । क्षितीशः । विष्णूदयः । भूर्ध्वम् । ऊरूद्भवः । गुरूहः :

२. महेन्द्रः । देवेशः । यथेति । महेश्वरः । व्याघ्रोत्पातः । इतोर्ध्वम् । महोष्णम् । विद्योनः । हिमर्त्तुः । देवर्त्तः । महर्कारः । तवल्कारः । अल्कारः ।

३. पश्चैते । शुद्धैरावती । मैवम् । विद्यैश्वर्यम् । तवौदनः । चित्तौदास्यम् । महौचित्यम् ।

४. अपैति । अवैवते । विश्वौहः ।

५. प्रार्च्छन् उपार्णोति ।

६. प्रेषयति । अवोषति ।

७. अवेहि । रामेहि ।

८. अत्यव्यक्तः । हर्यागमनम् । नद्यम्बु । लक्ष्म्यागमनम् । मुन्युचितम् । इत्यूर्ध्वम् । सख्युपदेशः । नद्युष्णा । अत्यृजुः । देव्यृणम् । नद्येवम् । अव्यैरावती । लक्ष्म्येकता । पप्यैषमः । अध्योङ्कारः । अत्यौदरिकः (भूखसे व्याकुल) । नद्योघः । देव्यौदार्यम् । तन्वङ्गी । स्वागतम् । वध्वाचारः । चञ्च्वाघातः । साध्विदम् । धेन्वीरितः । सुभ्र्वीक्षः । वध्वैक्यम् । धेन्वोकः । जामात्रर्थम् । भ्रात्रागमनम् । कर्त्रिदम् । दुहित्रीहितम् । भ्रात्रुपकारः । प्रशास्त्रूर्ध्वम् । भ्रात्रेकान्तः । पित्रैश्वर्यम् । पित्रोदनम् । कर्त्रौत्सुक्यम् । लर्थम् । लानय ।

९. जयति । शयिष्यते । गृहमुदकम् । भूपतये । अनयोः । रायौ । ग्लायति । मुनयागच्छ । सर्वस्मायिदम् । मायुः (पित्त) ग्लायेः । स्तवनम् । हविः ।

गवुत्सवः । गवैश्वर्यम् । स्मृतावौ । स्तावकः । स्मृतावा । श्रावयिष्यति । भावुकः । गवे । जनावौ ।

१०. ययिह । श्रियायुद्यतः । विद्यावुदिते ।

११. केपि । देवोपि । पण्डितोसौ ।

१२. गवायनम् । गवोद्धः ।

१३. गवेन्द्रः ।

१४. एहि मित्र ३ अत्र पठेव । आगच्छ राम ३ इह मैथिली पुष्पं सञ्चिनोति ।

१५. कवी इमौ । शम्भू आगच्छतः । बालिके अधीयाते ।

१६. अमी अश्नन्ति । अमू आस्ताम् ।

१७. अथो अपि । अहो आगतः ।

१८. आ एवं नु मन्यसे । उ उमेशः ।

शुद्ध करो—

रामात्र एहि, विष्णूभौ, कवीमौ, मृताण्डः, दिगेशः, स्वेरः, उपरोक्तम्, दिवोकसः, अक्षोहिणी, प्रोढः, सुखर्तः, प्रैजते, केशवौर्ध्वम्, तवैदम्, प्रैषयति, रामैहि, उपैतः, प्रैषः, अवैहि, मालार्च्छति, प्रार्च्छकः, देवोजः, बालोषति मालेजते, रामेति, वेधसायोंनमः, विष्णवायोंनमः, वस्त्वुदकम्, दध्यिदम्, पित्रणम्, रयीशः, गविन्द्रः, भवुकः, देव अतति । हरौऽत्र, विष्णौऽत्र, चेऽनम् । गवै, चित्रगवाग्रम्, गो उष्ट्रम्, गो ईशः, गो उद्धः ।

—×—

व्यञ्जन-सन्धि

व्यञ्जन वर्णके साथ व्यञ्जन अथवा स्वर वर्णके मेलेको 'व्यञ्जन—सन्धि' कहते हैं । यथा—तत् टीका = तट्टीका । तस्मिन् × इति = तस्मिन्निति ।

(१) स्तोःश्चुना श्चुः—

सकार और तवर्गके स्थानमें शकार और चवर्गके योग होनेपर (आगे या पीछे रहनेपर) दन्त्य सकारके स्थानमें तालव्य शकार और तवर्गके स्थानमें चवर्ग* होता है ।

*'शात्' सू० । शकारसे पर तवर्गको चवर्ग नहीं होता । यथा—विश्नः, प्रश्नः ।

उदाहरण—

रामस् + शेते = रामश्शेते । रामस् + चिनोति × रामश्चिनोति । तत् + शिवः = तच्छिवः ।

सत् + चित् = सच्चित् । तत् + छविः = तच्छविः । एतद् + जलम् = एतज्जलम् । शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय ! तत् + ज्ञनत्कारः = तज्ज्ञनत्कारः । याच् + ना = याच्ञा । यज् + नः = यज्ञः ।

(२) ष्टुना ष्टुः—

षकार या टवर्गके योगमें (आगे या पीछे रहनेपर) दन्त्य सकारके स्थानमें मूर्धन्य षकार और तवर्गके स्थानमें यथाक्रमेण टवर्ग*होता है ।

उदाहरण—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठ । रामस् + टीकते = रामष्टीकते ।

तत् + टीका = तट्टीका । अग्निचित् + ठकारः = अग्निचिट्ठकारः । सोमसुत् + डीनः = सोमसुड्डीनः । अद् + डति = अड्डति । चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे । पेष् + ता = पेष्टा । अधिष् + याता = अधिष्ठाता ।

(३) झलां जशोन्ते—

पदान्तमें † स्थित 'झल्' प्रत्याहारके स्थानमें 'जश्' प्रत्याहार होता है ।

उदाहरण—

वाक् × ईशः = वागीशः । अच् + अन्तः = अजन्तः । षट् + विद्वांसः = षड्विद्वांसः । जगत् + ईशः = जगदीशः । तत् + धनम् = तद्धनम् । युध् + श्याम् = युद्श्याम् । अप् + भाण्डः = अब्भाण्डः ।

(४) झयो होऽन्यतरस्याम्—

'झय्' प्रत्याहारके बाद याने ङ्-ञ्-ण्-न्-म्-को छोड़कर वर्गके किसी

---

*'न पदान्ताट्टोरनाम्' सू० । 'अनाम्-नवति-नगरीणामिति वाच्यम्' वा० । पदान्त टवर्गसे पर नाम्, नवति और नगरी भिन्न शब्दके सकार और तवर्ग के स्थानमें ष्टुत्व नहीं होता । यथा— षट् सन्तः, षट् ते ।

†'झलां जश् झशि' सू० । यदि अपदान्तमें 'झल्' वर्णसे पर 'झश्' वर्ण हो तो 'झल्' के स्थानमें 'जश्' (वर्गका तीसरा) होजाता है । 'सु ध् ध् य् उपास्यः' ऐसी स्थिति में 'ध्' को 'द्' होकर सु द् ध् य् उपास्यः' ऐसा बनता है ।

भी वर्णके आगे 'ह्' रहे तो उस वर्गके स्थानमें उसी वर्गका तृतीय वर्ण (ग्-ज्-ड्-द्-ब्) और 'ह्' के स्थानमें क्रमसे उसी वर्गका चतुर्थ वर्ण (घ्-झ्-ढ्-ध्-भ्) विकल्पसे होता है।

उदाहरण—

वाक् + हरिः = वाग्घरि–वाग्हरिः। तत् + हितम् = तद्धितम्-तद् हितम्। तत् + हननम् = तद्धननम्-तद्हननम्। विपत् + हेतुः = विपद्धेतुः–विपद् हेतुः। अच् + ह्रस्वः = अज्झ्रस्वः–अज् ह्रस्वः। षट् + हलानि = षड्ढलानि षड्हलानि। अप् + हरणम् = अब्भरणम्—अब् हरणम्।

(५) खरि च—

'खर्' परमें हो तो 'झल्' के स्थानमें 'चर्' (क्–च्–ट्–त्–प्) होता है।

उदाहरण—

१. उद् + थानम् = उत्थानम्। २. उद् + तम्भनम् = उत्तम्भनम्। ३. उद् + थापकः = उत्थापकः। दिग् + पालः। सम्पद् + कामः = सम्पत्कामः। विराड् + पुरुषः = विराट्पुरुषः।

(६) तोर्लिः—

तवर्गका 'त्-द्-न्' अक्षरके बाद 'ल' रहे तो त्-द् के स्थानमें 'ल्' और 'न्' के स्थानमें सानुनासिक 'ल्ँ' होता है।

उदाहरण—

तत् + लयः = तल्लयः। तद् + लीनः = तल्लीनः। विद्वान् + लिखति = विद्वाल्ँ लिखति।

(७) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा—

पदान्त 'यर्' से पर अनुनासिक वर्ण हो तो 'यर्' के स्थानमें विकल्पसे अपने वर्गका अनुनासिक वर्ण होजाता है।

नोट—वर्गका पञ्चम (ङ्-ञ्-ण्-न्-म्) वर्ण परमें रहनेसे पदके अन्त में विद्यमान वर्णका प्रथम वर्ण (क्-च्-ट्-त्-प्) के स्थानमें उसी वर्गका पञ्चम वर्ण और तदभावमें तृतीय वर्ण होता है। परन्तु प्रत्यय परमें रहनेपर ('प्रत्यये भाषायां नित्यम्' वा० से) सिर्फ पांचवा वर्ण ही होता है।

उदाहरण—

दिक् + नागः = दिङ्नागः-दिग्नागः। षट् + मासाः—षण्मासाः--षड्मासाः। एतत् + मुरारिः = एतन्मुरारिः--एतद्मुरारिः। अप् + मग्नः = अम्मग्नः-अब्मग्नः।

प्रत्ययपरे रहने पर—तत् + मात्रम् = तन्मात्रम् (मात्रच् प्रत्ययान्त) चित् + मयम् = चिन्मयम् (मयट्प्रत्ययान्त।)

(८) मोऽनुस्वारः—

व्यञ्जन वर्ण परमें रहनेपर पदके अन्तमें स्थित 'म्' के स्थानमें अनुस्वार होता है *।

उदाहरण—

हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे। पुष्पम् + सिञ्चति = पुष्पं सिञ्चति। गृहम् + गच्छति = गृहं गच्छति। ईश्वरं + भजति = ईश्वरं भजति।

(९) नश्चाऽपदान्तस्य झलि—

'झल्' परे रहनेपर अपदान्त में स्थित 'न्' और 'म्' के स्थानमें अनुस्वार हो जाता है।

उदाहरण—

आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते। रम् + स्यते। रंस्यते। यशान् + सि = यशांसि। दन् + शनम् = दंशनम्।

*अपवाद—(क) 'मो राजि समः क्वौ' 'क्विप्' प्रत्ययान्त राज्धातु परे होनेपर 'सम्' के मकारके स्थानमें मकार ही आदेश होता है अर्थात् अनुस्वार नहीं होता। यथा—सम् + राट् = सम्राट।

(ख) 'हे मपरे वा'। मकार परक हकार परमें होतो मकारके स्थान में विकल्प से अनुस्वार होता है। यथा—किम् + ह्मलयति = किं ह्मलयति--किम् ह्मलयति।

(ग) 'यवलपरे यवला वा' वा०। यकार, वकार और लकार परक हकारके पूर्व पदान्त मकार के स्थानमें विकल्पसे क्रमिक सानुनासिक यँ—वँ—लँ हो जाता है। यथा—किम् + ह्यः = कियँह्यः—किंह्यः। किम् + ह्वलयति = किवँह्वलयति--किंह्वलयति। किम् + ह्लादयति = किलँह्लादयति--किंह्लादयति।

(घ) 'नपरे नः'—नकार परक हकार परे हो तो पदान्त मकार के स्थान में विकल्पसे नकार हो जाता है। यथा—किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते--किंह्नुते।

(१) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः—

पदके मध्यमें स्थित अनुस्वार के बाद जिस वर्गका वर्ण रहता है अनुस्वारके स्थानमें उसी वर्गका पंचम वर्ण होजाता है।

उदाहरण—

आशं + कते = आशङ्कते। वां + छति = वाञ्छति। उत्कं + ठते = उत्कण्ठते। शां + तः = शान्तः। पं + फुल्यते = पम्फुल्यते।

(११) वा पदान्तस्य—

पदान्तमें स्थित अनुस्वारसे पर 'यय्' प्रत्याहारका कोई भी वर्ण हो तो अनुस्वारके स्थानमें परसवर्ण अर्थात् परवर्णके वर्गका पांचवां अक्षर और परमें य्–ल्–व् हो तो क्रमिक अनुनासिक विशिष्ट य्ँ–ल्ँ–व्ँ विकल्पसे होता है।

उदाहरण—

१. त्वं × करोषि = त्वङ्करोषि-त्वं करोषि। पुष्पं × चिनोति + पुष्पञ्चिनोति-पुष्पं चिनोति। ऊर्ध्वं × डीयते = ऊर्ध्वण्डीयते-उर्ध्वं डीयते। धनं × ददाति = धनन्ददाति-धनं ददाति। पुस्तकं × पठति = पुस्तकम्पठति-पुस्तकं पठति।

२. सं × यन्ता = सय्ँयन्ता-संयन्ता। यं × लोकम् = यल्ँलोकम् यंलोकम्। वशं × वदः = वशव्ँवदः-वशं वदः। सम् × वत्सरः = सव्ँवत्सरः—संवत्सरः।

(१२) नश्छव्यप्रशान्—

'अम्' परक 'छव्' प्रत्याहार परे रहनेपर प्रशान् भिन्न नान्त पदके स्थानमें रु * आदेश होता है।

नोट—'प्रशान्' शब्दको छोड़कर अन्यत्र यदि पदान्तमें 'न्' रहे और उसके बाद च्–छ् ट्–ठ्–त्–थ् रहे तो 'न्' को रुत्व होकर च्–छ्–ट् ठ्–त्–थ् के स्थान में क्रमसे श्च्–श्छ्-ष्ट्-ष्ठ्-स्त्-स्थ् तथा उसके पूर्व अनुनासिक अथवा अनुस्वार हो जाता है।

---

* 'रु' होनेके पश्चात्—'अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा" इससे अनुनासिक हो जाता है अथवा "अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः" से पूर्ण वर्ण को अनुस्वार का आगम होता है और "**खरवसानयोर्विसर्जनीयः**" से **रेफको विसर्ग होजाता है।** विसर्गके

उदाहरण—

गच्छन् + चकोरः = गच्छँश्चकोरः-गच्छंश्चकोर। महान् + छेदः = महाँश्छेदः-महांश्छेदः। महान् + टीकाकारः = महाँष्टीकाकारः-महांष्टीकाकारः। महान् + ठक्कुरः = महाँष्ठक्कुरः-महांष्ठक्कुरः। चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिँस्त्रायस्व-चक्रिंस्त्रायस्व। क्षिपद्न् + थुत्कारः = क्षिपँस्थूत्कारः-क्षिपंस्थूत्कारः

(१३) नश्च—

नान्त पदसे पर दन्त्य सकारसे पूर्व विकल्पसे धकार आजाता है और धकारको चर्त्व तकार हो जाता है।

उदाहरण—

सन् + सः = सन्त्सः सन्सः। मतिमान् + सन्तरति = मतिमान्त्सन्तरति- मतिमान् सन्तरति।

(१४) शि तुक्—

पदान्त नकारसे पर तालव्य शकार हो तो नकारके आगे विकल्पसे तकार आ जाता है।

नोट—तकारका आगम होनेपर प्रथम सूत्रसे 'त्' को च् और 'न्' को श्चुत्व 'ञ्' होता है और तदुपरान्त २० वां सूत्रसे शकारको विकल्पसे छकार होता है और छकार होनेपर चकारका विकल्पसे लोप * होजाता है।

उदाहरण

सन् + शम्भुः = सञ्छम्भुः-सञ्च्छम्भुः—सञ्च्शम्भुः—सञ्शम्भुः।

बाद—"विसर्जनीयस्य सः" से विसर्गके स्थानसे 'स' होता है। तदनन्तर-सम्भावना रहनेपर कहीं श्चुत्व और कहीं ष्टुत्व होता है। इसी सब कार्यको ऊपर 'नोट' करके बतलाया गया है। याद रहे कि जहाँ कहीं किसी वर्ण के परे किसी वर्णको 'रु' होगा वहाँ उपर्युक्त विसर्ग, सत्वऔर अनुनासिक अथवा अनुस्वार अवश्य होगा।

नोटः—'रु' के दो प्रकरण हैं। एक अष्टम अध्यायके तृतीय पादमें 'ससजुषो रुः' और दूसरा अष्टम अध्याय के तृतीया पादके आरम्भका "मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि" से "कानाम्रेडिते" तक है। इस द्वितीय प्रकरणके सूत्रोंसे हो विहित 'रु' से पूर्व वर्णको अनुनासिक या अनुस्वार होता है। ऐसा समझना चाहिये।

*लोप विधायक सूत्र—"झरो झरि सवर्णे"—हल् से पर झर्का लोप हो सवर्ण झर के परे विकल्पसे।

(१५) नॄन् पे—

यदि पकार परे हो तो नॄन्‌के नकारको विकल्पसे रु (र्) होता है।

(१६) कुप्वोः ≍क ≍पौ च *—

कवर्ग या पवर्ग (क, ख, प, फ) परे हो तो विसर्गके स्थानमें विकल्पसे अर्ध विसर्ग (≍) होता है।

नोट—रुत्व होनेपर १२ वां सूत्रोक्त (नोट) रीत्या अनुनासिक या अनुस्वार होनेके पश्चात् रेफको विसर्ग हो जाता है और विसर्ग होनेपर १६वां सूत्रकी प्राप्ति होती है।

उदाहरण—

१. नॄन् + पाहि = नॄँ पाहि-नॄं पाहि—नॄँ≍-नॄं≍ पाहि—नॄन्पाहि।

२. (कवर्गपरकका उदाहरण विसर्गसन्धिमें देखो)

(१७) समः सुटि—

'सुट्' (सुट् के सकार) परमें होनेपर 'सम्' के मकारको रु (र्) होता है।

नोट—रु (र्) होनेपर उससे पूर्व अकारको अनुनासिक वा अनुस्वार और रेफको विसर्ग होकर स् † हो जाता है।

उदाहरण—

सम् + स्कर्ता = सँस्स्कर्ता—संस्स्कर्ता। सम् + स्कारः = सँस्स्कारः—संस्स्कारः।

(१८) पुमः खय्यम्परे—

'अम्' परक 'खय्' परमें होनेपर पुम्‌के मकारके स्थानमें रु (र्) होता है।

नोट—रु होनेके बाद अन्य कार्य 'सम् + स्कर्ता' के समान होते हैं परन्तु सम्भावना रहनेपर कहीं श्चुत्व और कहीं ष्टुत्व भी हो जाता है।

उदाहरण—

पुम् + कोकिलः = पुँस्कोकिलः-पुंस्कोकिलः। पुम् + खनित्रम् = पुंस्खनित्रम्-पुंस्खनित्रम्। पुम् + चरित्रम् = पुँश्चरित्रम्-पुंश्चरित्रम्। पुम् + टीका = पुँष्टीका = पुंष्टीका।

* इस सूत्रको विसर्ग सन्धिप्रकारणमें भी देखो।

† सकार विधायक वार्तिक—'संपुंकानां सो वक्तव्यः।

(१९) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्—

स्वर वर्ण परमें रहनेसे ह्रस्व स्वरके बाद पदान्त ङ्-ण्-न्के स्थानमें द्वित्व (दो) ङ्ङ्-ण्ण्-न्न् हो जाता है।

उदाहरण—

प्रत्यङ् × आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः ।
सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः ।

(२०) शश्छोऽटि—

पदके अन्तमें स्थित झय् प्रत्याहारके बाद तालव्य शकार हो तो शकारके स्थानमें विकल्पसे छकार होता है, अट्के परे ।

नोट :—शकारके पूर्व तवर्ग रहनेसे तवर्ग को श्चुत्व होकर चवर्ग हो जाता है ।

उदाहरण —

तद् + शिवः = तच्छिवः-तच्शिवः । वाक् + शूरः = वाक्छूरः-वाक्शूरः ।

(२१) छे च—

ह्रस्वसे पर तुक् (त्), हो, छकार के परे ।

(२२) दीर्घात्—

दीर्घसे पर तुक् (त्) हो, छकारके परे ।

नोट—तुक् होनेके बाद 'त्' को श्चुत्व होकर च् होता है अर्थात्—स्वर वर्णके बाद 'छ' रहनेसे छ्के स्थान में 'च्छ्' हो जाता है ।

उदाहरण—

२१. शिव + छाया = शिवच्छाया । २२. आ + छादयति=आच्छादयति ।

सन्धि करो

१. कृष्णस् + शेते । तपस् + चिनोति । सूर्यस् + छन्नः । सत् + चित्रम् । तद् + छविः । विपद् + जालम् । धीमन् + जय । बृहद् + झटिका । राज् + ना । जज् + नाते ।

२. त्रयस् + षट्पदाः । देवम् + टीकते । मत् + टीका । एतत् + ठक्कुरः । महान् + डमरुः । जगद् + ढक्का । इष् + तः । षष् + थः ।

३. दिक् + अम्बरः । षट् + दर्शनम् । तत् + भवनम् । क्षुध् + स्याम् । अप + अब्जम् ।

४. दिक् + हस्ती । अच् + हलौ । रत्नमुट् + हरति । ईषत् + हसितम् । सम्पद् + हर्षः ।
५. उद् + स्थापयति । भेद् + तुम् । लभ् + स्यते । दिक् + रक्षकः ।
६. महत् + लावण्यम् । एतद् + लीला । महान् + लाभः ।
७. दिक् + मुखः । पद् + मुखोऽवतरति । सत् + मित्रम् । अप् + नायकः ।
८. पुस्तकम् + पठति । देवम् + भजति । दिव्यम् + सरः ।
९. पयान् + सि । संगम् + स्यते । जिवान् + सति । वृन् + हितम् ।
१०. अं + कितः । अं + चितम् । लुं + ठितः । गं + तव्यम् । गुं + फितः ।
११. कार्यं + करोति । इदं + चित्रम् । अयं + डमरुः । नदीं + तरति । इदं + पुष्पम् । सं + पतति । ग्रामं + याति । धनं + लभते । हरिं + वन्दे ।
१२. कस्मिन् + चित् । केशान् + छिनत्ति । महान् + टकारः । धीमान् + ठक्कुरः महान् + तडागः । महान् + थुत्कारः ।
१३. धनवान् + स्वपिति । बुद्धिमान् + सहते ।
१४. मतिमान् + शोभते । अप्रज्ञावान् + शत्रुः ।
१५. नॄन् + पालय । नॄन् + प्रतिगच्छ ।
१६. सन् + स्कृतम् ।
१७. पुम् + कार्यः । पुम् + छविः ।
१८. प्रत्यङ् + आस्ते । सुगण् + अस्ति । हसन् + आगतः ।
१९. मनाक् + शूरः । जगत् + शान्तिः । त्वत् + श्वशुरः । अच् + शेषम् ।
२०. तरु + छाया । चे + छिद्यते । आ + छाद्यम् ।

विच्छेद करो—

१. पयश्शीतम् । देवश्चिनोति । महच्चक्रम् । शरच्छटा । जगज्जीवनम् । राजञ्जय । बृहज्झरः । राज्ञो । जज्ञे ।
२. देवष्षष्ठः । वृक्षष्टीकते । अग्निचिट्टीकते । उड्डयनम् । एतड्ढक्का । महाण्ड-मरुः । राजण्ढौकसे । हृष्टः । पुष्टः ।
३. वाग्दानम् । दिगीशः । अजन्तः । वषडिन्द्राय । अब्भाजनम् ।
४. वसिग्घसति ।उद्धरणम् । ददद्घसति । तद्धेयम् ।
५. उत्तम्भते । छेत्तुम् । विराट्राजा । दिक्पालः ।

६. एतल्लय जगल्लीयते । ग्रन्थालँ्लाति ।

७. धिङ्मूर्ख ? । षण्णाम् जगन्निस्तारः । ककुम्नायकः ।

८. ग्रामं शास्ति । रामं हासयति । तं हन्ति ।

९. सरांसि । आक्रंस्यते । ध्वंस्यते । भ्रंस्यते ।

१०. अक्तिः । सञ्चितम् । कुण्ठितः । क्षन्तव्यम् । शम्भुः ।

११. मधुरञ्जायति । आम्रञ्चिनोति । कथण्डीयते । शङ्खन्धमति । रामम्भजति । देवय्ँयजति । दिव्यल्ँलोकम् । सव्ँवत्सरः ।

१२. भास्वाँश्चन्द्रः । महाँश्छेदः । उद्यांष्टङ्कारः । भवाँष्ठक्कुरः । महाँस्तरुः । महाँस्थकारः ।

१३. विद्वान्त्सहते । जलवान्प्सरोवरः ।

१४. विद्वाञ्छोभते । शिवूञ्छाययति ।

१५. नॄ॒ प्रतिषेधति । नॄ॒ प्रतिकरोति ।

१६. सँस्स्करोति ।

१७. पुँस्कर्तव्यः । पुँश्चमत्कारः । पुँष्टिट्टिभः ।

१८. यावन्नपतत् । एकस्मिन्नहनि । हसन्नागतः ।

१९. यावच्छक्यम् । विश्वसृट्छेते । मच्छरीरम् । षट्छ्यामाः ।

२०. वृक्षच्छाया । स्वच्छात्रः ।

शुद्ध करो—

कृष्णस्शेते । तत्छविः । अधिस्थाता । ददत्घसति । महान्नात्मा । विषयान्नाह । जगत्नायकः । संचितः । गंगाजलम् । यम्लोकम् । गच्छंचकोरः । मतिमान्च्छान्तः । पुङ्खनित्रम् । वाच्छूरः । वाक्मात्रेण । वटस्छाया ।

—×—

विसर्ग—सन्धि

(१) खरवसानयोर्विसर्जनीयः—

अवसान * में रेफ हो अथवा पदान्त रेफ के बाद वर्गोंके प्रथम, द्वितीय (क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ) और श ष स, का कोई वर्ण हो तो रेफके स्थान में विसर्ग होता है ।

---

* विरामोऽवसानम् ॥सू०॥ जिस वर्णके उच्चारणोत्तर वर्णान्तरका उच्चारण नहीं किया गया हो उस वर्णको अवसान कहते हैं ।

विसर्ग दो प्रकार के होते हैं सजात और रजात।

(क) (१) शब्द (२) विभक्ति * (सुप् —तिङ्) अथवा (३) प्रत्यय सम्बन्धी सकार के स्थानों में 'र्' होकर जो विसर्ग होता है, उसे 'सजात' विसर्ग कहते हैं।

उदाहरण—

१. निस् = निः। दुस् = दुः। शनैस् = शनैः। उच्चैस् = उच्चैः। नीचैस् = नीचैः। हविस् = हविः। पयस् = पयः।

२. देवस् = देवः। पठावस् = पठावः।

३. एकशस् = एकशः। बहुशस् = बहुशः।

नोट— कहां मूर्धन्य 'ष्' के स्थानों भी 'र्' होकर विसर्ग होता है।
यथा—सजुष् = सजूः।

(ख) (१) स्वाभाविक अथवा (२) ऋकारस्थानिक 'र्' के स्थानोंमें जो विसर्ग होता है उसे रजात विसर्ग कहते हैं। यथा—

१. स्वर् = स्वः। अन्तर् = अन्तः। प्रातर् = प्रातः। पुनर् = पुनः। निर् = निः। दुर् = दुः। धूर् —धूः।

२. गोर् = गोः पूर् = पूः। मातर् = मातः पितर् = पितः भ्रातर् भ्रातः। दुहितर् = दहितः। जामातर् = जामतः ज्ञातर् = ज्ञातः।

नोट—कहीं 'न्' के स्थानोंमें भी 'र्' होकर विसर्ग होता है।
यथा—अहन् = अहः।

(२) कुप्वोः ⌣क ⌣पौ च—

क ख, और प फ परे रहनेसे विसर्गके स्थानोंमें अर्धविसर्ग (⌣) होता है अथवा विसर्गका ही रहजाता है।

उदाहरण—

कः + करोति = कः करोति, कः करोति। कः + खनति = क⌣खनति, कः खनति। कः + पचति = क⌣पचति, कः पचति। कः + फलति = क⌣फलति-कः फलति।

---

*विभक्तिश्च ॥ सू० ॥ सुप् (सु — औ — जस्, अम्, — औट् — शस्, टा — भ्याम् — भिस्, ङे-भ्याम् — भ्यस्, ङसि — भ्याम् — भ्यस्, ङस — ओस्-आम्, ङि — ओस् — सुप्) और तिङ् (तिप्-तस् — झि, सिप् — थस् — थ, मिप्-वस् — मस्। त-आताम् — झ — थास् — आथाम् — ध्वम् — इट्-वहि-महिङ्) को विभक्ति संज्ञा होती है।

नोट—म्नि समास स्थलमें क ख, प फ के परे विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होता है, अधः—पदम् = अधस्पदम् । शिरः + पदम् = शिरस्पदम् । भाः + करः = भास्करः । भाः + पतिः = भास्पतिः । वाचः + पति = वाचस्पतिः ।

(३) अतःकृ-कमि—कंस-कुम्भ—पात्र-कुशा-कर्णी-ष्वनव्ययस्य

समासमें—'कृ' और 'कम्' धातु निष्पन्न पद (कार, कर, काम, कान्त) और कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा तथा कर्णी शब्द परमें रहनेसे, अकार से पर अव्यय सम्बन्विभिन्न विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होता ।

उदाहरण—

अयः + कारः = अयस्कारः । श्रेयः + करः = = श्रेयस्कारः । अयः + कामः = अयस्कामः । अयः + कान्तः = अयस्कान्तः । अयः + कंस = अयस्कंसः । पयः + कुम्भः = पयस्कुम्भः । पयः + पात्रम् = पयस्पात्रम् । अयः + कुशा = अयस्कुशा । अयः + कर्णी = अयस्कर्णी ।

(४) नमस्पुरसोर्गत्योः—

क ख, प फ के परे गतिसंज्ञक* 'नमस्' और 'पुरस्' शब्द सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होता है ।

उदाहरण—

नमः + कारः = नमस्कारः । नमः + करोति = नमस्करोति । पुरः + कारः = पुरस्कारः । पुरः + करोति = पुरस्करोति ।

(५) तिरसोऽन्यतरस्याम्—

क ख, प फ के परे 'तिरस्' शब्द सम्बन्धी विसर्गके स्थानमें विकल्पसे दन्त्य 'स्' होता है ।

उदाहरण—

तिरः + करोति = तिरस्कोति—तिरः करोति ।

(६) सोऽपदादौ—

पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्ययके परे विसर्गके स्थानसे दन्त्य 'स्' होता है ।

* "साक्षात्प्रभृतीनि च" इस सूत्रसे नमस् शब्द और पुरस् शब्दको गतिसंज्ञा होती है । (साक्षात् प्रभृति गण आकृतिगण है) ।

उदाहरण—

पयः + पाशम् = पयस्पाशम् । यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम् । यशः + कम् = यशस्कम् । यशः + काम्यति = यशस्काम्यति ।

नोट—अव्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में 'स्' नहीं होता । यथा—प्रातः कल्पम् । एवं 'काम्य' प्रत्यय के परे रजात विसर्ग के स्थान में 'स्' नहीं होता । यथा—गोः काम्यति ।

(७) इणः षः—

पाशादि प्रत्ययके परे इण्से परमें स्थित विसर्गके स्थानमें मूर्धन्य 'ष्' होता है ।

उदाहरण—

सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम् । सर्पिः + कल्पम् = सर्पिष्कल्पम् । सर्पिः + कम् = सर्पिष्कम् । सर्पिः + काम्यति = सर्पिष्काम्यति ।

(८) इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य—

क ख, प फ के परे इकार और उकारोपध* अप्रत्यय सम्बन्वी विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य 'ष्' होता है ।

उदाहरण—

निः + कृतम् = निष्कृतम् । दुः + कृतम् = दुष्कृतम् । बहिः + कृतम् = बहिष्कृतम् । आविः + कृतम् = आविष्कृतम् । चतुः + कोणः = चतुष्कोणः। निः + फलः = निष्फलः । निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम् ।

(९) इसुसोः सामर्थ्ये—

क ख, प फ के परे इस् और उस् भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमें विकल्पसे मूर्धन्य 'ष्' होता है ।

उदाहरण—

सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति–सर्पिःकरोति । धनुः + करोति = धनुष्करोति–धनुःकरोति ।

(१०) नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य—

समासमें क–ख अथवा प–फ के परे अनुत्तरपदस्थ 'इस्' और उस् भागान्त शब्दके विसर्गके स्थान में मूर्धन्य 'ष्' होता है ।

---

*अलोन्त्यात्पूर्व उपधा ॥सू०॥ अन्त्य 'अल्'से पूर्व वर्णकी उपधासंज्ञा होती है ।

उदाहरण —

१. सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका । हविः + कुण्डम् = हविष्कुण्डम् ।

२. धनुः + खण्डम् = धनुष्खण्डम् । धनुः + पाणिः = धनुष्पाणिः ।

(११) विसर्जनीयस्य सः—

खर् के परे विसर्गके स्थानमें सकार आदेश होता है ।

नोट—(१) च अथवा छ के परे विसर्गके स्थानमें दन्त्य सकार होता है और उसको भी श्चुत्व होकर तालव्य शकार हो जाता है ।

(२) ट अथवा ठ परे रहनेसे विसर्गके स्थानमें दन्त्यसकार होता है और उसको भी ष्टुत्व होकर मूर्धन्य षकार हो जाता है ।

(३) त अथवा थ के परे विसर्गके स्थानमें केवल दन्त्य सकार मात्र होता है ।

उदाहरण—

१. बालः + चलति = बालश्चलति । तरोः + छाया = तरोश्छाया ।

२. धनुः + टङ्कारः = धनुष्टङ्कारः । चतुरः = ठक्कुरः = चतुरष्ठक्कुरः ।

३. विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता । क्षिप्तः + थुत्कारः = क्षिप्तस्थुत्कारः ।

(१२) वा शरि—

शर् के परे विसर्गके स्थानमें विकल्पसे 'स्' होता है ।

नोट—(१) तालव्य शकार के परे विसर्गके स्थानमें विकल्पसे दन्त्य सकार होता है और तदुपरान्त श्चुत्व होनेसे वह तालव्य शकार होजाता है ।

(२) मूर्धन्य षकार के परे विसर्गके स्थानमें विकल्पसे दन्त्य सकार होता है और तदुपरान्त ष्टुत्व होनेसे वह मूर्धन्य षकार होजाता है ।

(३) दन्त्य सकार के परे विसर्गके स्थानमें विकल्पसे दन्त्य सकार मात्र होता है ।

उदाहरण—

१. हरिः + शेते = हरिश्शेते, हरिः शेते । शिशुः + शेते = शिशुश्शेते, शिशुः शेते ।

२. देवाः + षट् = देवाष्षट्—देवाः षट् । चतुरः + षट्पदः = चतुरष्षट्पदः—चतुरः षट्पदः ।

३. मनः + सुखम् = मनस्सुखम्—मनः सुखम् । प्रथमः + सर्गः = प्रथमस्सर्गः—प्रथमः सर्गः ।

(१४) ससजुषो रुः—

पदान्त सकार तथा सजुष् शब्दके षकारके स्थानमें रु (र्) होता है।

(१४) अतोरोरप्लुतादप्लुते—

अप्लुत अत् के परे अप्लुत अत्से पर रु (र्) के स्थान में उकार होता है।

नोट—उ होने पर अ × उ मिलकर गुण ओ होता है और पुनःओके अग्रवर्ती जो 'अ' रहता है उसे पूर्वरूप हो जाता है।

उदाहरण—

शिवस् + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः। यशस् + अभिलाषी = यशोऽभिलाषी। देवस् + अयम् = देवोऽयम्। वेदस् + अधीतः = वेदोऽधीतः।

(१५) हशि च—

हश्, (वर्ग का तृतीय, चतुर्थ अथवा पञ्चम वर्ण अथवा य, र, ल, व, अथवा ह) के परे रहने पर भी अप्लुत अकार से पर रु सम्बन्धी र् को उ होता है।

नोट—यहाँ उ होने के पश्चात् गुण मात्र ही होता है।

उदाहरण—

१. रामस् + गच्छति = रामो गच्छति। पूर्णस् + घटः = पूर्णो घटः। अद्भुतस् + ङकारः = अद्भुतो ङकारः।
२. कृष्णस् × जयति = कृष्णो जयति। मधुरस् + झङ्कारः = मधुरो झङ्कारः। ठस्येकस् + ञश्च = ठस्येको ञश्च।
३. सुन्दरस् + डमरुः = सुन्दरो डमरुः। बालस् + ढौकते = बालो ढौकते। कसन्तेभ्यस् + णः = कसन्तेभ्यो णः।
४. निर्वाणस् + दीपः = निर्वाणो दीपः। मृगस् + धावति = मृगो धावति। सुन्दरस् + नरः = सुन्दरो नरः।
५. रामस् + ब्रवीति = रामो ब्रवीति। मनस् + भावः = मनो भावः। देवदत्तस् + मन्यते = देवदत्तो मन्यते।
६. (य-र-ल-व-ह) नरस् + याति = नरो याति। मनस् + रथः = मनोरथः। यशस् + लभते = यशो लभते। शिवस् + वन्द्यः = शिवो वन्द्यः। बालस् + हसति = बालो हसति।

नोट—सजात 'र्' से अतिरिक्त स्थलोंमें 'र्' के बादमें वर्गका तृतीय, चतुर्थ

या पंचम वर्ण रहे अथवा य, ल, व, या ह रहे तो र् अग्रिमवर्ण की चोटी पर चला जाता है।

उदाहरण—

१. प्रातर्+गमनम् = प्रातर्गमनम्। पुनर्+धर्मः = पुनर्धर्मः।
२. निर्+जलम् = निर्जलम्। दुर्+झनत्कारः = दुर्झनत्कारः।
३. पुनर्+डीयते = पुनर्डीयते। अन्तर्+ढक्का = अन्तर्ढक्का।
४. दुर्+दिनम् = दुर्दिनम्। अन्तर्+धत्ते = अन्तर्धत्ते। पुनर्+नमनम् =पुनर्नमनम्।
५. भ्रातर्+याहि = भ्रातर्याहि। पुनर्+लब्धः = पुनर्लब्धः। जामातर्+वद = जामातर्वद। प्रातर्+हसति = प्रातर्हसति।

(१६) भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योऽशि—

अश् के परे 'भो' पूर्वक, 'भगो' पूर्वक, अघोपूर्वक और अवर्ण पूर्वक रु (र्) के स्थान में यकार आदेश होता है।

(१७) हलि सर्वेषाम्

'हल्' के परे भो, भगो, अघो और अवर्ण पूर्वक य् का लोप होता है।

उदाहरण—

१. भोस्+देवाः = भो र्+देवाः = भो य्+देवाः = भो देवाः। भगोस्+नमस्ते = भगोर्+नमस्ते = भगोय्+नमस्ते = भगो नमस्ते। अघोस्+याहि = अघोर्+याहि=अघोय्+याहि = अघोयाहि।

२. देवास्+हसन्ति = देवार्+हसन्ति = देवाय्+हसन्ति = देवा हसन्ति। भक्तास्+भजन्ति = भक्तार्+भजन्ति = भक्ताय्+भजन्ति = भक्ता भजन्ति।

नोट—१७ सूत्रमें 'सर्वेषाम्' कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि हल् के परे सभी के मत से यकार का नित्य लोप हो। किन्तु 'अच्' के परे अवर्ण पूर्वक पदान्त यकार का "लोपः शाकल्यस्य" (स्वरसन्धि-प्रकरण सू० ८) से विकल्पसे लोप हो।

उदाहरण—

देवास्+इह = देवार्+इह = देव य्×इह = देवा इह--देवायिह। ब्राह्मणास्+आगताः = ब्राह्मणा र्+आगताः = ब्राह्मणा य् आगता = ब्राह्मणा आगताः-ब्राह्मणायागताः। देवास्+ऊचुः = देवा र्+ऊचुः = देवा य्+ऊचुः = देवा ऊचुः-देवायूचुः। रामस्+एति = राम र्+एति = राम य् एति = राम एति रामयेति। एवं—देव इच्छति-देवयिच्छति इत्यादि।

(१८) रो रि—

रेफ के परे रेफ का लोप होता है।

(१९) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः—

ढकार * और रेफ लोपके निमित्त ढकार और रेफके परे पूर्व अण्के स्थानमें दीर्घ आदेश होता है।

उदाहरण—

पुनर् + रमते = पुन + रमते = पुना रमते। हरिर् + रम्यः = हरि + रम्यः = हरी रम्यः। शम्भुर् + राजते = शम्भु + राजते = शम्भू राजते। अन्तर् + राष्ट्रीयः = अन्त + राष्ट्रीयः = अन्ताराष्ट्रीयः। हरिर् + रक्षति = हरि + रक्षति = हरी रक्षति।

(२०) एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि—

नञ् समास † को छोड़कर—हल् के परे ककार ‡ रहित एतद् और तद् शब्द सम्बन्धी सु (स्) का लोप होता है।

उदाहरण—

एसस् + विष्णुः = एष विष्णुः। सस् + शम्भुः = स शम्भुः। एषस् + चलति = एष चलति। एषस् + हसति = एष हसति।

(२१) सोऽचि लोपेचेत्पादपूरणाम्—

लोप होने से ही यदि पादकी पूर्त्ति होती हो तो अच् के परे स (तत्-शब्द) सम्बन्धी सु (स्) का लोप होता है।

---

* ढकार लोपका उदाहरण तिङन्तमें देखो?—लिढ् + ढः = लि + ढः = लीढः। अलिढ् + ढ = अलि + ढ = अलीढ।

† नञ्समासमें सकारका लोप नहीं होता। यथा—न सः असः, असस् + शिवः = असः शिवः।

‡ एतद् शब्दसे "अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः" इस सूत्रसे अकच् होकर 'एषकः' रूप बनता है। वहां हल् के परे सकारका लोप नहीं होता इसी लिये ककार रहित कहा गया है। उदाहरण यथा—एषकस् + रुद्रः = एषको रुद्रः। यहां लोप नहीं होकर रुत्व–उत्व-गुण हो जाता है।

§ अत एव "सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्" यहाँ लोप नहीं हुआ। क्योंकि लोप नहीं होने पर भी सकारको रुत्व, उत्व, गुण तथा पूर्वरूप होनेसे भी (प्रयोग सिद्ध होता है और) पादकी पूर्त्ति हो जाती है।

उदाहरण—

सस् + इमामविड्ढि प्रभृतिम् = स + इमामविड्ढि प्रभृतिम् = सेमामविड्ढि प्रभृतिम् * (लोप होने पर गुण हो जाता है)। सस् + एष दाशरथी रामः = स + एष दाशदथी रामः = सैष दाशरथी रामः † (लोप होने पर वृद्धि हो जाती है)

सन्धि करो—

पुनर् + करोति। रामः + क्रुध्यति। यशः + करः। नमः + कारः। पूः + काम्यति। हविः + काम्यति। निः + फलम्। धनुः + खण्डितम्। धनुः × खण्डम्। गोपालः + शेते। रामः + अयम्। चन्द्रशेखरः + हसति। पुनः + हसति। भोः + नमस्ते। अन्तर् + रामः।

शुद्ध करो--

रामो क्रुध्यति। श्रेयष्करः। अधिस्थाता, अहर्सु। हविर्कुण्डम्। सो रामः। बालो चलति। मनो सुखम्। एषो बालः। सूर्यो शोभते। हतो शत्रुः। मनो कल्पना। अज्ञो इन्द्रः। यशालंलभते। प्रातो गमनम्। देवाः हसन्ति। अहोगतः। अन्तर्राष्ट्रीयः भ्रातः रमय। एषो विष्णुस्शिवो वा।

इति सन्धि-प्रकरण समाप्त।

---

* 'सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे'' यह वैदिक छन्द ''जगति'' का एक पाद है। १२ अक्षर होने पर इस पादकीपूर्ति होती है। यदि यहाँ लोप नहीं होगा तो १३ अक्षर हो जांयगे और उससे छन्दोभङ्ग हो जायगा।

† संपूर्ण श्लोक इस प्रकार का है—

''सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी, सैष भीमो महाबलः॥'' इति।

यह अनुष्टुप् छन्द है। इसके प्रति पादमें ८ अक्षर होते हैं। यहाँ सु का लोप नहीं होनेसे सकारको रुत्व, यत्व तथा ''लोप शाकल्यस्य' से यकारका लोप हो जायगा और यलोपके असिद्ध होनेसे फिर वृद्धि नहीं हो सकेगी। एवं च प्रत्येक पादमें ९ अक्षर हो जायेंगे जिससे पाद की पूर्त्ति न हो सकेगी।

परिशिष्टम्

(१) कारक-विचार—

करोति क्रियां जनयतीति कारकम् । क्रिया के उत्पादक को कारक कहते हैं । संस्कृत व्याकरण में सम्बोधन और सम्बन्ध को छोड़कर छः कारक कहे गये हैं—

कर्ता कर्म च करणञ्च सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणञ्च इत्याहुः कारकाणि षट्' ।

'स्वतन्त्रः कर्ता—किसी भी काम को करने में जो पूर्ण स्वतन्त्र हो (दूसरों के अधीन न हो । उसे कर्ता कहते हैं । 'रामो गृहं गच्छति' यहाँ पर घर जाने में राम स्वतन्त्र है, इसलिये उक्त वाक्य में राम ही कर्ता है* ।

'सम्बोधने च'—'सम्बोधनं स्वाभिमुखीकरणम् ।' प्रयोजनवश आह्वान के द्वारा जिसको अपनी ओर किया जावे उसे सम्बोधन कहते हैं और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है जैसे हे राम ! यहाँ पर पुकार कर राम को वक्ता अपनी ओर करता है, इसलिये 'राम' सम्बोवन हुआ और उसमें प्रथमा हुई । प्रायः करके चेतन पदार्थों में हो सम्बोधन किया जाता है ।

नोट--भवेद्विभक्तिः प्रथमा कर्तृवाच्यस्य कर्तरि ।
सम्वुद्धौ नाममात्रे च कर्मवाच्यस्य कर्मणि ।।
क्वचिदव्यययोगे च प्रथमा कथ्यते बुधैः ।।

'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'—कर्ता अपनी क्रिया (व्यापार) द्वारा जिसको प्राप्त करना चाहता है उसे कर्म कहते हैं । और अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है । "कृष्णो

---

* संस्कृत साहित्यमें कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्यमें प्रयोग किये जाते हैं । कर्तृवाच्य में कर्ता के अनुसार क्रिया में वचन पुरुषादि की व्यवस्था होती है । कर्ताके एकत्व, द्वित्व, और बहुत्वके अनुसार क्रिया में एकवचन द्विवचन और वहुवचन होते हैं और युष्मद्कर्ता की प्रधानता होने पर क्रियामें मध्यम पुरुष, अस्मद्कर्ताकी प्रधानता होने पर उत्तम पुरुष और इन दोनोंके अप्राधान्यमें या अभावमें प्रथम पुरुष होता है जैसे क्रमसे 'त्वं पश्यसि' 'अहं पश्यामि' 'मोहनः पश्यति' इत्यादि । इसी तरह 'युवां पश्यथः, 'यूय पश्यथ' 'आवां पश्यावः 'वयं पश्यामः' "चैत्रमैत्रौ पश्यतः" 'गुरवः पश्यन्ति', इन सभी वाक्योंमें कर्ताके प्राधान्य होनेसे उसीके अनुसार क्रिया हुई हैं, इसलिए इसे कर्तृवाच्य कहते हैं । कर्तृवाच्यमें कर्ता-से प्रथमा विभक्ति होती है । (३) तिङन्तविचार' देखो)

ग्रामं गच्छति'' इस वाक्य में ग्राम कर्म है क्योंकि कृष्ण गमन क्रिया द्वारा ग्राम को प्राप्त करता है इसलिये ग्राम कर्म हुआ। इस कर्म के तीन भेद हैं— 'निर्वर्त्य' 'विकार्य और प्राप्य'। 'घटं करोति' 'तण्डुलं पचति' 'ग्रामं गच्छति' ये क्रमशः तीनों के उदाहरण हैं।

'तथायुक्तं चानीप्सितम्' उक्तकर्म के और भी दो भेद हैं—'उपेक्ष्य' (उदासीन) और द्वेष्य'। इच्छा के नहीं रहने पर भी कर्त्ता अपने व्यापार द्वारा जिसको आनुषङ्गिकरूप (अनायास) से प्राप्त कर लेता है उसे ही 'अनीप्सित' (उपेक्ष्य और द्वेष्य) कर्म कहते हैं। जैसे 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' 'ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते' यहाँ पर ग्राम जाना ही कर्ता का अभिलषित है तृण का छूना तो यों ही हो जाता है। इसी तरह भात खाना ही कर्ता का इष्ट है, जहर खाना उसका इष्ट नहीं फिर भी धोखेसे चावलके साथ जहर भी खा जाता है इसलिये उक्त स्थलों में क्रमशः 'उपेक्ष्य' और 'द्वेष्य' कर्म के उदाहरण समझने चाहिये।

'अकथितञ्च'—अपादान वगैरह कारकों की अविवक्षासे कर्मत्व रूप में ही वक्ता की विवक्षा होने पर अपादानादि भी कर्म हो जाते हैं। इसे 'अकथित' कर्म कहते हैं। जैसे 'गां दोग्धि पयः' बलिं भिक्षते वसुधाम्' 'सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति' 'अजां ग्रामं नयति' 'गर्गान् शतं दण्डयति' 'माणवकं धर्मं शास्ति' इत्यादि।

नोट—कर्मलक्षण यथा—''कर्तृवृत्तिव्यापारप्रयोज्यफलवत्वप्रकारकेच्छा-निरूपितविषयताश्रयत्वम्''

---

* कर्मवाच्यमें कर्मकी प्रधानता होती है, और कर्मके अनुसार क्रियामें वचन पुरुषादिकी व्यवस्था होती है, जैसे 'रामेण घटौ क्रियेते' यहाँ पर दो घटरूप कर्मके प्राधान्य होने से क्रियामें भी द्विवचन एवं प्रथम पुरुष हुआ। परन्तु कर्मप्राधान्य-स्थलमें कर्मके उक्त होनेसे कर्ममें प्रथमा विभक्ति हो जाती है, और कर्तामें तृतीया विभक्ति हो जाती है क्योंकि उक्तवाक्यमें कर्ता अनुक्त है इसलिये ''कर्तृकरणयो-स्तृतीया' इससे अनुक्त कर्तामें तृतीया हुई। किन्तु कर्ताके उक्त होनेसे प्रथमा और कर्मके अनुक्त होने पर द्वितीया होती है जैसे ''देव ओदनं पचति'। कर्मवाच्यमें धातुसे आत्मनेपद ही आता है और मध्यमें यक् प्रत्यय लग जाता है। भाववाच्यमें क्रियाकी प्रधानता होती है और अकर्मक धातुसे ही भावमें लकार होते हैं। इस-लिये कर्ताके अनुक्त होनेसे तृतीया हो जाती है। और क्रियामें एकवचन और प्रथम पुरुषही होते हैं जैसे 'त्वया, मया चैत्रेण वा भूयते' इत्यादि। ((२) 'तिङन्तविचार' देखो)

"साधकतमं करणम्'–जिसके व्यापार के अव्यवहित (तुरत) उत्तरकाल में क्रिया की निष्पत्ति होती है उसे करण कहते हैं और अनुक्त करण में तृतीया होती है। जैसे—"रामेण बाणेन हतो वाली" यहाँ पर बाण के व्यापार होने के अव्यवहित उत्तर काल में ही वाली का हनन हो जाता है इसलिए बाण करण है और उक्तस्थल में कर्म में क्त प्रत्यय होने से करण अनुक्त रहा इसलिए अनुक्त करण में "कर्तृकरणयोस्तृतीया" इससे तृतीया हुई। उक्तस्थल में राम कर्ता को करण नहीं कह सकते क्योंकि राम के व्यापार के अव्यवहित उत्तर क्षण में हनन क्रिया नहीं हो पाती है इसलिए कर्त्ता करण नहीं हो सकता। परन्तु यह करणत्वादि वक्ता के विवक्षाधीन माना गया है अर्थात् कर्तादि कारकों को भी जब वक्ता करणत्वेन विवक्षित कर देता है तब कर्त्तादि भी करण हो सकता है परन्तु ये सारी बातें वक्ता की विपक्षा के ऊपर निर्भर रहती हैं। भर्तृहरिने भी इस बात को पुष्ट किया है-'क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्। विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत् यदा स्मृतम्।' 'वस्तुतस्तदनिर्देश्यं नहि वस्तु व्यवस्थितम्। स्थाल्या पच्यते ह्येषा विवक्षा दृश्यते यतः।' इत्यादि।

'हेतौ'—हेतु में भी तृतीया होती है। जैसे 'दण्डेन घटः' पुण्येन दृष्टो हरिः' यहाँ पर घटकार्य के प्रति दण्ड हेतु है एवं हरि दर्शन के प्रति पुण्य (धर्म) हेतु है। हेतु को करण नहीं कह सकते क्योंकि क्रिया मात्र का जनक एवं व्यापारवान् करण होता है, किन्तु द्रव्य गुणक्रियाओं का जनक व्यापारवान् और कहीं पर व्यापाराभाववान् भी हेतु होता है जैसे 'दण्डेन घटः' यहाँ पर दण्ड व्यापारवान् एवं घटरूपद्रव्य का जनक है, इसी तरह "पुण्येन दृष्टो हरिः" यहाँ पर पुण्य दर्शनक्रिया का जनक होते हुए भी व्यापार शून्य है इसलिए इन दोनों को करण नहीं कह सकते। "कुठारेण काष्ठं छिनत्ति" यहाँ पर कुल्हाड़ी करण है क्योंकि यह छेदनक्रिया मात्र का जनक और व्यापारवान् भी है। इसी तरह जिस अङ्ग के विकार से शरीरों में वैगुण्य व्यवहृत होता हो उससे भी तृतीया होती है जैसे "अक्ष्णा काणः" "पादेन खञ्जः" इत्यादि।

नोट—हेतु और करण के लक्षणों में विभिन्नता—१. द्रव्य--गुण--क्रियात्मककार्यत्रयनिरूपित–निर्व्यापार--सव्यापार-- वृत्ति च यत्तद्धेतुत्वम्'। २. "क्रियाजनकमात्रवृत्तिव्यापारवद्वृत्ति च यत्तत् करणत्वम्"।

तृतीया कहां २ होती है इसके लिए निम्न कारिका स्मरण रखने योग्य है—

'तृतीया करणे चैव कर्मवाच्यस्य कर्तरि।
सहार्थैश्च तथा हेतौ प्रकृत्यादिभ्य एव च॥
ऊनार्थैर्वारणार्थैश्च सदृशार्थैस्तथैव च।
अङ्गिनो विकृतिर्येन तृतीया स्यात्तदङ्गतः॥

'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'—दान क्रिया के कर्म के साथ जिसका सम्बन्ध स्थापित किया जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं। जैसे 'विप्राय गां ददाति' यहां पर दान क्रिया के कर्म गो के साथ ब्राह्मण का स्वत्व (अधिकार) सम्बन्ध स्थापित किया गया है इसलिए ब्राह्मण सम्प्रदान-हुआ। और अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी हो जाती है। 'रजकाय वस्त्रं ददाति' ऐसा वाक्य नहीं होता किन्तु 'रजकस्य वस्त्रं ददाति' ऐसा वाक्य ही शुद्ध माना गया है, क्योंकि जिस वस्तु से जब बिलकुल ही अपना अधिकार हट जाय और दूसरा ही व्यक्ति उसका मालिक हो जाय तभी चतुर्थी मानी जाती है। सम्प्रदान शब्द का अर्थ भी यही होता है कि सर्वथा अपना अधिकार हटाकर दूसरे का अधिकार स्थापित हो जाय, क्योंकि 'स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वक—परस्वत्वोत्पत्तिजनकव्यापार' ही दा धातु का अर्थ माना गया है। कोई विद्वान् तो 'परस्वत्वोत्पत्तिजनकव्यापार' को ही दा धात्वर्थ मानते हैं। उनकी विचार धारा से त्याग वाक्य में 'हरये नमः' इत्यादि स्थल में 'इदं न मम' ऐसा जोड़ना जरूरी हो जाता हैं। लेकिन उक्त सिद्धान्त पक्ष में इस को जोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती।

"नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषट्योगाच्च"—नमः प्रभृति शब्दों के योग में भी चतुर्थी होती है। जैसे 'हरये नमः' 'प्रजाभ्यः स्वस्ति' 'अग्नयेस्वाहा' इत्यादि।

"क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्"—जिसके उद्देश्य से कुछ क्रिया की जाती है उसे भी सम्प्रदान कहते हैं। जैसे 'पत्ये शेते' इस वाक्य में पति के उद्देश्य से शयन क्रिया का विधान किया गया है इसलिए पति की सम्प्रदान संज्ञा और चतुर्थी हुई।

नोट —चतुर्थी के लिए निम्न कारिका स्मरण करने योग्य है—

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् यादर्थ्ये च क्रियायुते।
रुच्यर्थानां प्रियमाणे नमो योगे च सा भवेत्॥'

'ध्रुवमपायेऽपादानम्'—जिससे किसी भी वस्तु का विश्लेष (अलगाव)

होता है उसे अपादान (ध्रुव) कहते हैं, 'वृक्षात्पर्णं पतति' इस वाक्य में वृक्ष से पत्ते का वियोग होता है इसलिये वृक्ष अपादान हुआ। अर्थात् प्रस्तुत धात्वर्थव्यापार का जो आश्रय नहीं हो किन्तु बिछुड़ाव में अवधि होता हो उसे ही ध्रुव या अपादान कहा गया है। और अनुक्त अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है। जिस से नियमानुसार विद्यादि ग्रहण किया जाता है उससे भी पञ्चमी, होती है जैसे 'गुरोरधीते' गुरु से नियमपूर्वक विद्या पढ़ता है। जिससे डरना या लुकना एवं त्राण चाहता हो उसमे भी पञ्चमी होती है जैसे 'चौराद् बिभेति' 'मातुर्निलीयते' 'सिंहात् त्रायते' इत्यादि। जहां से जिसकी उत्पत्ति एवं अभिव्यक्ति होती है उससे भी पञ्चमी मानी गई है जैसे 'ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते' 'हिमवतो गङ्गा प्रभवति' इत्यादि।

नोट—अपादाने ल्यबर्थे च योगे पूर्वादिभिस्तथा।
उत्कर्षे पञ्चमी ज्ञेया हेत्वर्थे तु विभाषया॥
ऋते विनादिभिर्योगे पञ्चमी च स्मृता बुधैः॥

'षष्ठी शेषे'—उक्त अर्थों से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी होती है। जैसे राज्ञः पुरुषः' 'चैत्रस्य पुत्रः' इत्यादि। सम्बन्ध षष्ठी को कारक नहीं माना गया है क्योंकि सम्बन्ध में क्रिया जनकत्व रूप कारकत्व नहीं हो सकता। जैसे 'माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति' इस वाक्य में पिता से ही प्रश्नादि क्रिया की उपपत्ति हो जाने के कारण उसके प्रति माणवक अन्यथा सिद्ध हो जाता है। घट कार्य के प्रति दण्डादि का कारणत्व सर्वमत सिद्ध होने पर भी रासभ को कारण नहीं माना गया है, इसलिये कारणत्व के लक्षण में "अन्यथा-सिद्धिशून्यत्वे सति नियतपूर्ववृत्तित्वरूप" निवेश करना जरूरी हो जाता है ऐसी स्थिति में रासभ अन्यथा सिद्ध होने से कारण नहीं हो सकता, इसी तरह प्रकृत में माणवक भी अन्यथा सिद्ध होने से क्रियाजनक नहीं हो सका। अतः कारकत्व भी सम्बन्ध षष्ठी को नहीं माना गया।

नोट—षष्ठी भवति सम्बन्धे कृदन्ते कर्तृकर्मणोः।
तृतीया स्यात् तथा षष्ठी कृत्यानां कर्तृकारके॥
तुल्यार्थयोगे षष्ठी स्यात् तृतीया च विभाषया॥

'आधारोऽधिकरणम्'—कर्ता और कर्म के द्वारा तद्वृत्ति क्रिया का जो आधार होता है उसे अधिकरण कहते हैं। जैसे 'कटे आस्ते' 'स्थाल्यां पचति' यहाँ

पर चटाई और बटलोही, देवदत्तादिकर्त्ता एवं तण्डुल कर्म के द्वारा उपवेशन एवं विक्लेदन क्रिया का आधार होती हैं इसलिये इन्हें अधिकरण संज्ञा हुई और अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति हुई। अधिकरण के तीन भेद हैं—'औपश्लेषिक' 'वैषयिक' और 'अभिव्यापक'। क्रमशः तीनों के उदाहरण निम्न प्रकार समझने चाहिये 'कटे आस्ते' 'मोक्षे इच्छास्ति' तिलेषु तैलम्' इत्यादि।

नोट—आधारे च तथा भावे विभक्तिः सप्तमी भवेत्
अनादरे च निर्धारे षष्ठी स्यात् सप्तमी तथा ॥

छः कारकों के उदाहरण एक ही साथ निम्न श्लोक में देखो :—

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे।
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः॥
रामान्नारित परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम्।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम मामुद्धर।



(२) समास-विचार

'समसनं समासः'--संक्षेप को समास कहते हैं। अर्थात् बड़े वाक्य को छोटा करना ही समास का मुख्य उद्देश्य होता है। और विस्तार को व्यास कहते हैं। व्याकरण में विस्तृत वाक्य ही व्यास पद से लिया जाता है। लाघव के लिए किसी पदसमूह को छोटा करना हो तो वहाँ पर समास कर दिया जाता है जिससे वह पदसमुदाय छोटा हो जाता है, समास करने का यही प्रयोजन है।

कृदन्त-तद्धितान्त-समास—एकशेष और सानदि द्वादश प्रत्ययान्तधातुरूप, ये पांच वृत्तियाँ मानी गयीं हैं। जैसे पाचक, औपगव, राजपुरुष, पितरौ पुत्रीयति इत्यादि, इन वृत्तियों में विशिष्ट (समुदाय) में ही अर्थबोधजनकशक्ति मानी गयी है, यह शक्ति दो प्रकार की है-'एकार्थीभाव' और 'व्यपेक्षा'। तत्र 'पृथगर्थानां पदानां समुदायशक्त्या विशिष्टैकार्थोपस्थितिजनकत्वम्, एकार्थीभावत्वम्, पृथक् २ अर्थवाले पदों में समुदाय शक्ति से पानी में मिली हुई धूलि की तरह मिले जुले अर्थों का ज्ञान कराने वाली वृत्ति को एकार्थीभाव कहते हैं, 'अनेकार्थों हि एकार्थी भवति अनेनेति एकार्थीभावः' अनेकार्थ जिससे मिलकर एकार्थ हो जाय उसे ही वास्तव में एकार्थीभाव कहते हैं। जिसके बदौलत उक्तस्थलों में जैसे 'पितरौ'

कहने से माता और पिता इन दोनों का ही बोध होता है, प्रत्येक का अलग २ बोध नहीं होता यही बात उक्त पांचों वृत्तियों में मानी गयी है, इसके दो भेद हैं—'जहत्स्वार्था' और 'अजहत्स्वार्था' जहाँ पर प्रत्येकपद अपने २ अर्थों को छोड़कर विशिष्टार्थों को ही बतलाता है उसे जहत्स्वार्थावृत्ति कहते हैं। जैसे 'प्रतिष्ठा' 'निष्ठा' 'कृष्णसर्पः' इत्यादि स्थलों में अवयवों का कुछ भी अर्थ न होकर एक विलक्षण अर्थ ही ज्ञात होता है। जहां पर प्रत्येकपद अपने २ अर्थों के साथ २ समुदाय के अर्थ को प्रधान रूप से बतलाता है उसे 'अजहत्स्वार्था' वृत्ति कहते हैं। जैसे 'पङ्कज' कहने से कीचड़ से पैदा होने वाला कमल समझा जाता है इसलिये यहां पर अवयवार्थों के साथ ही विशिष्टार्थ कमल का बोध होने से अजत्स्वार्था वृत्ति हुई। इसे ही योगरूढिशक्ति कहते हैं। यही वृत्ति प्रायः अधिक स्थलों में ली जाती है क्योंकि इसमें अवयवार्थों का भी ज्ञान होने से अधिक लाभ होता है। जहत्स्वार्था तो वहीं पर मानी जाती है, जहाँ पर अवयवार्थों का संग्रह नहीं हो सकता हो। कहा भी है—'जहत्सार्था तु तत्रैव यत्र रुढिर्विरोधिनी' इत्यादि। जहत्स्वार्था को ही रुढिशक्ति कहते हैं। जैसे—'प्रतिष्ठा' कहने से इज्जत या महत्ता का बोध होता है—प्रत्येकपद का अर्थ कुछ भी नहीं संगत होता।

'स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकांक्षादिवशात् यः परस्परं सम्बन्धः सा व्यपेक्षा' अपने २ अर्थों को बतलानेवाले पदों का जो अपेक्षावश आपस में अन्वय होता है उसे व्यपेक्षा कहते हैं। इस में अलग २ ही पदार्थों की उपस्थिति होती है। एकार्थीभाव की तरह मिले जुले दोनों पदार्थों की उपस्थिति नहीं होती, केवल आकांक्षावश एकपदार्थ का दूसरे के साथ सम्बन्ध मात्र हो जाता है। यह शक्ति वाक्य में मानी गयी है। उक्त समास के पांच भेद बतलाये गये हैं—'केवल समास' 'अव्ययीभाव' 'तत्पुरुष' 'बहुव्रीहि' और 'द्वन्द्व'। तत्पुरुष के दो भेद हैं—'कर्मधारय' और 'द्विगु'।

१. 'विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः'—जिसकी कोई विशेष संज्ञा न हो उसे केवल समास कहते हैं। यह समास कहीं पर सुबन्त को सुबन्त के साथ किया जाता है जैसे 'पूर्वं भूत': भूतपूर्वः।' और कहीं पर तिङन्त के साथ भी किया जाता है जैसे 'अनुव्यचलत्' 'पर्यभूषत्' यह सारा कार्य 'सह सुपा' के सहारे पूरा किया जाता है। 'इवेन समासो बिभक्त्यलोपश्च' इव के साथभी यह समास होता है लेकिन इसमें समासमध्यवर्ती विभक्ति का लोप नहीं होता है,

जैसे 'वागर्थाविव' 'जीमूतस्येव' 'हरीतकीं भुंक्ष्व राजन् 'मातेव' हितकारिणीमित्यादि।

२. 'पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः'। जिसमें प्रायः करके पूर्वपदार्थ की प्रधानता हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। इस समास के पूर्वपद प्रायः अव्यय ही होते हैं। जैसे—उपकृष्णम्' (कृष्ण के पास)। इसमें उप पूर्वपद अव्यय है और उसी का सामीप्य रूप अर्थ मुख्यरूप से प्रतीत होता है। यह नित्य समास होता है 'अविग्रहोऽस्वपदविग्रहो वा नित्यसमासः' जिसमें विग्रह वाक्य नहीं बनता हो या बनता भी हो तो समास जिसके साथ होता है उससे भिन्न के साथ ही विग्रह किया जाता हो यही नित्य समास का चिह्न है जैसे—

'कृष्णस्य समीपम्' ''उपकृष्णम्। यहां पर समीप पद के साथ विग्रह किया गया है और उप के साथ समास होता है। यह समास अव्ययों के अधिकरण आदि विभक्त्यर्थ, सामीप्य, समृद्धि, विगतऋद्धि, अर्थाभाव, अत्यय(ध्वंस) सम्प्रति(अभी) शब्दप्रादुर्भाव, पश्चात्, यथार्थ, (योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति, सादृश्य) आनुपूर्व्य, यौगपद्य, सादृश्य, सम्पत्ति, साकल्य, अन्त इत्यादि अनेकों अर्थों में समस्त होने से अत्यन्त ही व्युत्पत्ति वर्द्धक और चमत्कारजनक होता है जैसे— 'अधिहरि' हरि में 'उपकुम्भम्' घट के पास 'सुमद्रम्' मद्रों की समृद्धि 'दुर्यवनम्' यवनों की बदहालत 'निर्मक्षिकम्' मक्षिकाओं का अभाव 'अतिहिमम्' पालाओं का नाश 'अतिनिद्रम्' असमय में सोना अच्छा नहीं 'इतिहरि' हरि शब्द का प्रकाश 'अनुविष्णु' विष्णु के पीछे 'अनुरूपम्' स्वरूप के योग्य 'प्रत्यर्थम्' अर्थ अर्थ के प्रति 'यथाशक्ति' शक्ति के अनुसार –'सहरि' हरि का सादृश्य 'अनुज्येष्ठम्' बड़ों के अनुक्रम से 'सचक्रम् चक्र के एक साथ 'ससखि' मित्र के तुल्य 'सक्षत्रम्' क्षत्रियों की सम्पत्ति, 'सतृणम्' तिनकों के साथ ही 'साग्नि' अग्नि ग्रन्थ-पर्यन्त इत्यादि विलक्षण ही उक्त प्रयोगों के अर्थ हो जाते हैं। 'अनुगङ्गं वाराणसी' गङ्गा के फैलाव के अनुसार काशी का फैलाव है। 'अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति' आग की ओर पतंगें गिर रहे हैं। 'पारेगङ्गं' गङ्गा के पार 'मध्येयमुनम्' यमुना के मध्य इत्यादि अनेक अर्थों में यह समास होता है। अव्ययीभाव को अव्यय संज्ञा हो जाती है और नपुंसकत्व भी हो जाता है इसलिये प्रायः करके अधिक प्रयोगों में अकारान्त को छोड़कर सभी जगह विभक्ति का श्रवण नहीं होता है। जैसे 'अधिहरि' 'यथाशक्ति' इत्यादि अकारान्त में पञ्चमी को छोड़कर सभी विभक्तियों का अम् आदेश हो जाता है और पञ्चमी अलुक हो जाता है।

परन्तु तृतीया सप्तमी में विकल्प में यह कार्य होता है।। जैसे 'उपकृष्णम्' 'उपकृष्णात्' उपकृष्णेन' वा 'उपकृष्णे' वा। कहीं पर पूर्व पदार्थ की प्रधानता नहीं भी होती है जैसे--'उन्मत्तगङ्गम्' लोहितगङ्गम्' इत्यादि।

३. 'उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष:'—जिसमें उत्तर पदार्थ की प्रधानता रहती है उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे-'राजपुरुष:' राजा का पुरुष (सिपाही वगैरह) यहाँ पर पुरुष अर्थ मुख्यरूप से भासित होता है अत: इसे तत्पुरुष कहते हैं। इसमें द्वितीया से लेकर सप्तमी विभक्त्यन्त पूर्वपदों के साथ समास होता है। जैसे 'कृष्णं श्रित:' 'कृष्णश्रित:, 'शङ्कुलया खण्ड:' 'शङ्कुलाखण्ड:' 'यूपाय दारु' 'यूपदारु' 'चोराद्भयम्' 'चोरभयम्' 'राज्ञो धनम्' 'राजधनम्' 'अक्षेषु शौण्ड:' अक्षशौण्ड: इत्यादि। इसमें 'उपपद समास' 'गतिसमास' प्रादिसमास' 'मध्यमपद-लोपी समास' 'उपमित समास' 'उपमान समास' और 'नञ् समास' भी आ जाता है। जैसे-'कुम्भकार:' 'व्याघ्री' 'अतिमाल:' 'निष्कौशाम्बि:' 'शाकपार्थिव:' 'देवब्रा-ह्मण:' 'पुरुषव्याघ्र:' 'घनश्याम:' अनश्व:' इत्यादि। 'तत्पुरुषविशेष:'कर्मधारय:' तत्पुरुषविशेष को कर्मधारय समास कहते हैं। तत्पुरुष: समानाधिकरण: कर्म-धारय:' विशेषण विशेष्यभाव से एकार्थप्रतिपादक समास को कर्मधारय कहते हैं। जैसे—'नीलोत्पलम्' 'महानवमी' 'मयूरव्यंसक' इत्यादि। कर्मधारय विशेष को द्विगु समास कहते हैं।

'संख्यापूर्वो द्विगु:'—द्विगु समासमें संख्यावाचक शब्द पूर्व पद में होता है। जैसे 'त्रिलोकी' 'पञ्चगवधन:' 'षाण्मातुर:' 'द्वैमातुर:' 'सप्तर्षय:' 'पञ्चगवम्' इत्यादि। कहीं पर उत्तर पद की प्रधानता नहीं भी होती है जैसे—'अर्ध-पिप्पली' पिपली का आधा हिस्सा। यहां पर पूर्व पद 'अर्ध का अर्थ ही प्रधान रूप से भासित होता है। अकारान्त उत्तर पदक द्विगु स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। जैसे 'पञ्चमूली' 'दशमूली' इत्यादि।

'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयो:'—द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तर पद की तरह लिङ्गव्यवस्था होती है। जैसे 'मयूरीकुक्कुटौ इमौ' कुक्कुटमयूर्यौ इमे' 'राज-कुमारी' इयम्। 'ब्राह्मणीपुत्रोऽयम्'। किन्तु--रात्रि, अह्न और अहन् शब्दान्त द्वन्द्व और तत्पुरुष पुंल्लिङ्ग हो जाता है जैसे—'अहोरात्र:' 'पूर्वाह्ण:' 'द्व्यह:' इत्यादि। परन्तु संख्यावाचक शब्द पूर्व पद में रहने से रात्रि शब्दान्त उक्त समासनपुंसक होता है। जैसे—'द्विरात्रम्' त्रिरात्रम्'। अर्द्धर्चादिगणपठित शब्द पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक भी होते हैं। जैसे—'अर्द्धर्च:''अर्द्धर्चम्'। सेना सुरा छाया शाला

और निशा शब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक और स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। जैसे—ब्राह्मण-सेनम्' 'ब्राह्मणसेना' इत्यादि। अमनुष्य पूर्वक राजादि और सभा शब्दान्त तत्पुरुष नपुंसक हो जाता है। जैसे—'ईश्वरसमम्' 'इनसभम्' इत्यादि।

४. 'अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः'—जिसमें समासान्तर्वर्ती से कोई अन्य पदार्थ ही मुख्य रूप से जाना जाता है उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। द्वितीया विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्तिपर्यन्त के अर्थ अन्य पदार्थ में लिए जाते हैं, किन्तु प्रथमान्तपदों का ही समास होता है। जैसे—प्राप्तमुदकं यं स 'प्राप्तोदको ग्रामः' ऊढो रथो येन स 'ऊढरथोऽनड्वान्' 'उपहृतपशूरुद्रः' 'उद्धृतौदना-स्थाली' 'पीताम्बरो हरिः' 'वीरपुरुषको ग्रामः' इत्यादि। इसे समानाधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं। कहीं पर सप्तम्यन्तादि और प्रथमान्तपदों का भी यह समास प्रयोजनवश माना जाता है। इसे व्यधिकरण बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे—कण्ठे कालो यस्य स 'कण्ठेकालः' पद्मं नाभौ यस्य स 'पद्मनाभः' दण्डः पाणौ यस्य स ''दण्डपाणिः'' इत्यादि।

तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान के भेद से यह समास दो प्रकार का होता है। जहाँ पर आनयनादि क्रिया में अन्य पदार्थ के साथ २ समास मध्यवर्ती पदार्थों का भी विशेषणरूप से बोध होता है वहाँ उसे तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं। जैसे—'लम्बकर्णपुरुषमानय' यहाँ पर आनयन क्रिया में पुरुष के साथ २ लम्बे कर्णों का भी अन्वय होता हैं इसलिए यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहलाता है और जहां क्रिया में अन्य पदार्थों के साथ २ समास के मध्यवर्ती पदार्थों का अन्वय नहीं जाना जाता हो वहां उसे अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं। जैसे—'दृष्टसागर—पुरुषमानय'। यहाँ पर आनयन क्रिया में पुरुष के साथ २ समुद्र का अन्वय नहीं होता है वहां यह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहलाता है। इस समास में सप्तम्यन्त और विशेषण वाचक शब्दों का पूर्वप्रयोग ही होता, जो ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें अन्य पदार्थों के लिङ्गों के अनुसार ही समास के मध्यवर्ती पदों का लिङ्ग हो जाता है, यह बात भी ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट ही प्रतीत हो रही है। इस समास में कहीं पर अन्य पदार्थ की प्रधानता नहीं भी रहती, जैसे 'द्वित्राः' पञ्चषा' त्रिचतुराः' (दो या तीन, पाँच या छै, तीन या चार) इन स्थलों में समास के मध्यवर्ती पदार्थों की ही प्रधानता देखी जाती है।

५. 'उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः'—'सर्वपदार्थप्रधानो वा द्वन्द्वः' जिसमें समासमध्यवर्ती सभी पदार्थ मुख्यरूप से जाने जाते हैं उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। जैसे 'घटपटौ' घड़ा और कपड़ा दोनों ही मुख्य रूप से प्रतीत होते हैं। 'हरिहरगुरव' (विष्णु,महादेव और गुरु) ये तीनों ही मुख्यरूप से जाने जाते हैं। चार्थ में यह समास होता है। चकार के निम्न चार अर्थ माने गये हैं--

(१) समुच्चय, (२) अन्वाचय, (३) इतरेतरयोग और (४) समाहार।

१. परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः'—जहाँ पर एक क्रियापद की आवृत्ति करके उसमें पहिले असमस्यमान एक पदार्थ का अन्वय होता है, बाद में दूसरे का अन्वय होता है उसी को समुच्चय कहते हैं जैसे— 'ईश्वरं गुरुञ्च भजस्व' यहाँ पर गुरु का च शब्द के साथ सम्बन्ध होने से ईश्वर सापेक्षत्व है किन्तु ईश्वरका गुरुसापेक्षत्व नहीं है क्योंकि ईश्वर के साथ च शब्द का सम्बन्ध नहीं होता, इसलिये यहां एक ही च शब्द का प्रयोग किया गया है। ऐसी दशा में 'ईश्वरं भजस्व' 'गुरुञ्च भजस्व' इस प्रकार से दो वाक्य बन जाते हैं। इसलिये यहाँ पर उक्तरीति से ईश्वर गुरु को परस्पर निरपेक्ष होकर ही भजन क्रिया में क्रमसे कर्मत्वेण अन्वय होने के कारण परस्पर अन्वय नहीं होने से सामर्थ्य नहीं रहा, अतः समास भी नहीं हो सका क्योंकि समर्थः पदविधिः इसके अनुसार परस्पर सामर्थ्य रहने पर ही समास होता है।

२. 'अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेऽन्वाचयः'—जहाँ पर एक क्रिया में एक पदार्थ का अप्रधानरूपसे अन्वय होता है और दूसरी क्रिया में दूसरे का मुख्यरूप से अन्वय होता है उसे अन्वाचय कहते हैं जैसे--'भिक्षामट गां चानय' यहाँ पर भिक्षाप्राप्त करना जरूरी है किन्तु गौ का लाना कोई जरूरी नहीं मालूम पड़ता, हाँ इतना अवश्य जो कहीं मिल जाय तो गौ को भी लेते आना, यही वक्ता का अभिप्राय है न कि उसके लिये कोई विशेष प्रयत्न करना जरूरी है, इसलिये यहाँ पर एक की प्रधानता और दूसरे की अप्रधानता होने से परस्पर अन्वय नहीं हो सकने के कारण सामर्थ्याभाव से समास नहीं होता है।

३. 'मिलितानामन्वये इतरेतरयोगः'—जहाँ पर परस्पर अपेक्षित समुदित का एक क्रिया में अन्वय होता है उसे इतरेतर योग कहते हैं। जैसे'धवश्च खादिरश्चेति धवखदिरौ' छिन्धि, यहाँ पर समुदित धव और खदिर का ही एक

साथ छेदन क्रिया में अन्वय होने से परस्पर साहित्य हो जाने के कारण सामर्थ्य रहने से समास हो जाता है और दोनों की प्रधानता होने से द्विवचन होता है।

४. 'समूहः समाहारः'––समुदाय को ही समाहार कहते हैं। जैसे–'पाण्योः पादयोश्च समाहारः पाणिपादम्' यहाँ पर समुदाय में दो हाथ और दो पाद का एक साथ ही अन्वय होने से परस्पर साहित्य हो जाने से सामर्थ्य की क्षति नहीं हुई इसलिये समास हो गया। किन्तु इसमें समुदाय की प्रधानता और एकत्व होने से नपुंसकत्व और एक वचन ही आता है। जैसे––'संज्ञापरिभाषम्' 'मार्दङ्गिकपाणविकम्' 'रथिकाश्वारोहम्' इत्यादि उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें अल्प स्वरवाले पदों का पूर्व प्रयोग होता है। जैसे-शिवकेशवौ' इत्यादि। पूज्यवाचक शब्दों का भी पूर्व प्रयोग हो जाता है जैसे––'तापसपर्वतौ' इत्यादि। इकारान्त और उकारान्त घिसंज्ञकका भी पूर्व प्रयोग हो जाता है। जैसे–'हरिहरौ' इत्यादि। ब्राह्मणादिवर्णों में क्रमसे ही पूर्व प्रयोग होता है। जैसे-'ब्राह्मण क्षत्रियविट्शूद्राः' इत्यादि। लघु अक्षर का भी पूर्व प्रयोग होता है। जैसे–'कुश-काशम्' इत्यादि। भ्रातृवाचक शब्दों में बड़ों का ही पूर्व प्रयोग होता है। जैसे–'युधिष्ठिरार्जुनौ,इत्यादि। समान अक्षरवाले ऋतु और नक्षत्र वाचक शब्दोंमें क्रम से ही पूर्व प्रयोग होता है। जैसे––'हेमन्तशिशिरवसन्ताः' कृत्तिकारोहिण्यौ' इत्यादि। अप्राणिवाचक जाति शब्दों का समाहार द्वन्द्व ही होता है। जैसे 'धाना शष्कुलि' इत्यादि।

———

(३) तिङन्त-विचार—

प्रयोग कालमें धातुके उत्तर जो 'तिङ्' विभक्ति होती है; उस तिङ् विभक्तिके योगसे जो पद निष्पन्न होता है वह 'तिङन्त' कहलाता है।

लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ्—

कालका ज्ञान एवं विधि आदिका अर्थज्ञान कराने के लिए धातुके बाद लडादि तिङ् विभक्तियां दश प्रकार की होती हैं। इनमें 'लेट्' का प्रयोग वेदमें होता है।

१—वर्तमाने लट्—

वर्तमान क्रियावृत्ति धातु से लट् लकार होता है।

नोट—जिसमें क्रिया का प्रारम्भ हो उसे 'वर्तमान' कहते हैं। वर्तमान सामीप्य रहने पर भूत और भविष्यत् कालमें भी 'लट्' होता है। यथा-'इदानीमेव आगच्छामि' (अभी आया हूँ)। 'अयमहं गच्छामि' (मैं अभी जाउंगा)। 'स्म' के योगसे भूत कालमें भी 'लट्' का प्रयोग होता है। यथा—'स पठतिस्म' (उसने पढ़ा)। 'यावत्' के योगसे भविष्यत् कालमें भी 'लट्' का प्रयोग होता है। यथा—'स यावत् नागच्छति' (वह जब तक नहीं आयगा)।

लकारके स्थानमें तिबादि विभक्तियां होती हैं (पृ०३०की टि० देखो) विभक्तियोंमें ३ पुरुष होते हैं-प्रथम, मध्यम और उत्तम। क्रियाके साथ युष्मद् या अस्मद् शब्दसे भिन्न शब्दोंके प्रयोग रहने पर प्रथम पुरुष, युष्मद् शब्दके प्रयोग रहने पर मध्यम पुरुष और अस्मद् शब्दके प्रयोग रहने पर उत्तम पुरुष होता है, तथा कर्ता का जो वचन रहे वही क्रिया का भी वचन होता है। यथा—
१. बालकः पठति। बालकौ पठतः। बालकाः पठन्ति। २. त्वं पठसि। युवां पठथः। यूयं पठथ। ३. अहं पठामि। आवां पठावः। वयं पठामः।

३—परोक्षे लिट्—

भूत अनद्यतन और परोक्षार्थ वृत्ति जो धातु उससे 'लिट्' लकार होता है।

नोट—अनद्यतन कालके दो भेद हैं—भूत और भविष्यत्। पूर्व दिन की आधी रात (१२ बजे) तक जो क्रिया हुई हो वह भूत अनद्यतन और आगामी (आज) रातके बारह बजेके बाद जो क्रिया होने वाली हो वह भविष्यत् अनद्यतन (लुट्) की क्रिया कही जाती है। लक्षण यथा—'अतीतायाः रात्रेः पश्चार्धेन आगामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः, तद्भिन्नोऽनद्यतनः।'

'परोक्ष' उसको कहते हैं जिसमें वक्ताका प्रत्यक्ष नहीं हो। एवं च सिद्ध यह हुआ कि 'परोक्ष' और 'अनद्यतन' भूत कालमें 'लिट्' का प्रयोग हो। यथा—'रामो बालिनं जघान। स्मरण रहे कि चेत्तविक्षेपमें तथा किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करने पर प्रत्यक्ष (उत्तम पुरुष) में भी 'लिट् का प्रयोग होता है। यथा—१. 'सुप्तोऽहं किल विललाप' २. 'नाऽहं कलिङ्गां जगाम।

३—अनद्यतने लुट्—

भविष्यत् अनद्यतन अर्थमें धातुसे लुट् लकार होता है।

४—लृट् शेषे च—

भविष्यत् अर्थमें धातुसे'लृट्'लकार होता है; क्रियार्थकक्रिया रहे या न रहे।

नोट—एक क्रिया यदि दूसरी क्रियाके लिये हो रही हो तो उस क्रियाको 'क्रियार्थक क्रिया' कहते हैं। यथा—'पठितुं गच्छति' इति—'पठिष्यति'।

५—लोट् च—

विध्यादि अर्थोंमें धातुसे लोट् लकार होता है।

६—आशिषि लिङ्लोटौ—

आशीर्वाद अर्थ में धातुसे लिङ् और लोट्लकार होता है।

७—अनद्यतने लङ्—

अनद्यतन भूतार्थवृत्ति धातुसे 'लङ्' लकार होता है।

८—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्—

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न और प्रार्थना अर्थोंमें धातुसे 'लिङ्' लकार होता है।

नोट—विध्यादि अर्थोंमें लोट्का भी विधान हो चुका है। अब यहाँ दोनों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—विधिः=प्रेरणम्; भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्। जैसे—'भवान् वस्त्रं क्षालयतु, क्षालयेद्वा। निमन्त्रणं=नियोगकरणम्,आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम्। जैसे—'इह मातामहश्राद्धे दौहित्रादयो भवन्तः भुञ्जताम् वा भुञ्जीरन्। आमन्त्रणं=कामचारानुज्ञा। जैसे—मत्पुत्रोत्सवे भवान् आगच्छतु, आगच्छेद्वा। अधीष्टः=सत्कारपूर्वको व्यापारः। जैसे—मदात्मजं चन्द्रशेखरं गोपालं वा भवान् अध्यापयतु अध्यापयेद्वा। सम्प्रश्नः—सम्प्रधारणम्। जैसे—किं भोः व्याकरणंभवान् अधीयीत, उत तर्कम्? प्रार्थनं = याच्या। यथा—भवान् मे फलं ददातु दद्याद्वा।

९—माङि लुङ्—

'माङ् उपपद रहने पर धातुसे लुङ् लकार होता है।

१०—लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ—

भविष्यत् अर्थ में विद्यमान धातुसे हेतुहेतुमद्भावादि (कार्यकारणभावादि) 'अर्थमें 'लृङ्' लकार होता है, क्रियाकी अनिष्पत्ति यदि गम्यमान रहे।

११—लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः—सकर्मक धातुसे कर्म और कर्तामें तथा अकर्मक धातुसे भाव और कर्तामें लकार होता है।

नोट—१ कर्तृवाच्यमें कर्ता प्रथमान्त और कर्म द्वितीयान्त तथा क्रिया के पुरुष-वचन कर्ताके अनुसार प्रयुक्त होते हैं। यथा—'इन्दुमती पुष्पं चिनोति'। एवं कर्म वाच्यमें कर्ता तृतीयान्त और कर्म प्रथमान्त तथा क्रिया के पुरुष-वचन कर्मके अनुसार होते हैं। यथा—'गोपालेन वेदाः पठ्यन्ते'। एवं भाव वाच्यमें कर्त्ता कर्म वाच्यवत् तृतीयान्त होता है पर कर्म नहीं होता तथा क्रिया सदैव प्रथम पुरुष का एक वचनान्त ही होती है। यथा—'अस्माभिः स्थीयते'। तथाहि-

'प्रयोगे कर्तृवाच्यस्य कर्तरि प्रथमा भवेत्।
द्वितीया कर्मणि तथा क्रिया कर्तृपदान्विता॥
प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया स्यात्तु कर्तरि।
कर्मणि प्रथमा चैव क्रिया कर्मानुसारिणी॥
कर्माभावः सदा भावे तृतीया चैव कर्तरि।
प्रथमः पुरुषश्चैकवचनं च क्रियापदे॥'

१२—भावकर्मणोः—

भाववाच्य और कर्मवाच्य में लकारके स्थानमें आत्मनेपद होता है।

१३—सार्वधातुके यक्—

भाववाची और कर्मवाची सार्वधातुकके परे धातुसे 'यक् प्रत्यय होता है।

नोट—भाव क्रियाको कहते हैं। वह भावार्थक लकारसे अनूदित होता है। भावमें प्रत्यय करनेपर 'तिङ्' के साथ युष्मद्-अस्मद् शब्द एकार्थवाचक नहीं होते, अतः धातुसे प्रथम पुरुष ही होता है। (कर्तामें प्रत्यय करनेपर तिङ् और युष्मद्-अस्मद् शब्द कर्तारूप एकार्थके वाचक होते हैं, अतः धातुसे मध्यम-उत्तम पुरुष होते हैं) तिङर्थ क्रियाके द्रव्यरूप न होनेसे द्वित्व, बहुत्व संख्याकी प्रतीति नहीं होती। इसलिये द्विवचन,बहुवचन नहीं होते,किन्तु स्वाभाविक एकवचन ही होता

है। भावमें प्रत्यय होनेपर कर्ताके अनुक्त होनेसे कर्तासे तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—'त्वं भवसि' इस अर्थमें 'त्वया भूयते' इत्यादि।

फल और व्यापार धातुके अर्थ होते हैं—'फलव्यापारयोर्धातुः' व्यापारका आश्रय कर्ता और फलका आश्रय कर्म होता है। जिसका फल और व्यापार भिन्न २ आश्रयमें हो उसे सकर्मक कहते हैः—'फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्'। यथा—'देवदत्तः तण्डुलं पचति यहां विक्लित्ति रूप फल तण्डुलमें और पाकरूप व्यापार देवदत्तमें है, अतः 'पच्' धातुको सकर्मक समझना चाहिए। जिसका फल और व्यापार एक ही आश्रयमें हो उसे अकर्मक कहते हैं—'फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्'। यथा—'गोपालः शेते' यहां विश्राम रूप फल और चक्षुर्निमीलनादि रूप व्यापार भी गोपालमें हैं, अतः 'शीङ्' धातु अकर्मक है।

[सामान्यनियमः—साकांक्षित क्रिया 'सकर्मक', यथा—पठति, खादति आदि २। क्या पढ़ता है ? क्या खाता है ?। एवं निराकांक्षित क्रिया'अकर्मक, यथा—जागता है, हंसता है। यहां क्या जागता है, क्या हंसता है,इत्यादि आकांक्षा ही नहीं उठती।]

विशेष नियम—

'धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया'॥

यहां पर प्रत्येक वाक्यका अर्थ इस प्रकार है—

१. सकर्मक धातु यदि अर्थान्तर (अकर्मक क्रियारूप अर्थान्तर) को कहने लगे तो' वह अकर्मक हो जाती है। यथा 'भारं वहति=प्रापयति' यहां प्रापणार्थक 'वह' धातु सकर्मक है, परन्तु यही अर्थान्तर (स्यन्दतेरूप अर्थ) में प्रवृत होकर कहीं अकर्मक होती है। यथा 'नदी वहति=स्यन्दते-प्रस्रवति'।

२. यदि कर्मका धात्वर्थसे उपसंग्रह हो जाय तो धातु अकर्मक हो जाती है। यथा 'जीवति' नृत्यति' यहां 'जीव' का प्राणधारण करना और 'नृत' का अङ्गविक्षेप करना अर्थ है। परन्तु दोनों जगह प्राण और अङ्ग रूप कर्मका धात्वर्थ में ही अन्तर्भाव हो जाता है अतः ये दोनों धातु सकर्मक नहीं होते।

३. कहीं प्रसिद्ध कर्म रहने पर भी धातु अकर्मक हो जाती। है यथा 'मेघो'

वर्षति' अर्थात् मेघो जलं वर्षति। यहां पर जलरूप कर्म प्रसिद्ध है, क्योंकि मेघ जल ही वर्षाता है आग वगैरह नहीं। इसलिये धातु अकर्मक कही जाती है।

४. कर्मकी अविवक्षा करने पर भी धातु अकर्मक हो जाती है, यथा—'हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः' (हितात् हितपुरुषात् यः न संशृणुते= स्वहितं न मन्यते, स किं प्रभुः, कुत्सित इत्यर्थः) यहां पर स्वहितरूप कर्मकी अविवक्षा करने पर धातु अकर्मक हो जाती है।

'अकर्मकोप्युपसर्गवशात्सकर्मकः'—अकर्मक धातु भी उपसर्गवशात् सकर्मक हो जाती है। यथा-'अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण' इत्यादि। यहां अनुपूर्वक भूधातु अनुभवार्थक होनेसे सकर्मक हो गया और उससे कर्ममें भी प्रत्यय सिद्ध हुआ : कर्म उक्त होनेपर कर्मसे प्रथमा और कर्ता अनुक्त होनेपर कर्तासे तृतीया विभक्ति होती हैं। एवं कर्मके एकवचन रहनेपर क्रिया प्रथम पुरुषके एकवचन, द्विवचन रहनेपर द्विवचन और बहुवचन रहनेपर बहुवचन होती है। केवल युष्मद् कर्म रहनेपर मध्यम पुरुषकी और अस्मद् कर्म रहनेपर उत्तम पुरुषकी क्रिया होती है। यथा—गोपालेन आनन्दः अनुभूयते,गोपालेन आनन्दौ अनुभूयेते गोपालेन आनन्दाः अनुभूयन्ते। एवं गोपालेन त्वम् अनुभूयसे, गोपालेन युवाम् अनुभूयेथे, गोपालेन यूयम् अनुभूयध्वे। गोपालेन अहम् अनुभूये, गोपालेन आवाम् अनुभूयावहे, गोपालेन वयम् अनुभूयामहे।

(इसीप्रकार अन्यत्र भी समझना)।

नोट—अकर्मक धातु ण्यन्त होनेपर भी सकर्मक हो जाता है और सकर्मक होनेपर उससे कर्ममें भी प्रत्यय होने लगता है तथा कर्मानुसार क्रिया होती है। यथा कर्तामें-गोपालः भवति चन्द्रशेखरः तं प्रेरयति, इति चन्द्रशेखरः गोपालं भावयति। कर्ममें-चन्द्रशेखरेण गोपालः भाव्यते, गोपालौ भाव्येते गोपालाः भाव्यन्ते। एवं—चन्द्रशेखरेण त्वं भाव्यसे, युवां भाव्येथे, यूयं भाव्यध्वे। अहं भाव्ये, आवाम् भाव्यावहे, वयम् भाव्यामहे।

द्विकर्मक धातुओंके किस कर्ममें लकार होगा इसकी व्यवस्था निम्न है:-

'गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया॥
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयोः मताः॥

अर्थात् दुह्, याच्, पच्, दण्ड, रुधि, प्रच्छि, चि, ब्रू, शासु, जि, मन्थ, मुष् इन धातुओं के (अकथितञ्चेति सूत्रविहित) गौणकर्ममें लकार होता है। (इसलिये गौण कर्मसे ही प्रथमा विभक्ति होती है,यथा 'गौदुह्यते पयः' । नी, हृ, कृष्, तथा वह धातुओंके ('अकथितञ्च' से भिन्न सूत्रविहित) प्रधान कर्ममें लकार होता है, (इस लिये प्रधान कर्मसे प्रथमा विभक्ति होती है) यथा 'अजा ग्रामं नीयते' । बुद्ध्यर्थक, भक्षार्थक, और शब्दकर्मक धातुओंके ('गतिबुद्धि' सूत्रविहित गौण या तदतिरिक्त सूत्रविहित प्रधान) दोनों कर्मोंमें स्वेच्छासे लकार होता हैं (इसलिये प्रधानाऽप्रधान उभय कर्मोसे प्रथमा विभक्ति होती है) यथा- 'बोध्यते माणवकं धर्मः, माणवको धर्मम्' इति वा । अन्येषां--पूर्वोक्तोंसे अन्य अर्थात् ण्यन्त जो गत्यर्थक, अकर्मक तथा 'हृक्रोरन्यतरस्याम्' इस सूत्रोपात्त हृञ् और कृञ् धातुओंके प्रयोज्य कर्ममें लकार होता है (अतः प्रयोज्य कर्मसे प्रथमा विभक्ति होती है) यथा--मासमास्यते माणवकः, हार्यते कार्यते वा भृत्यः कटं गोपालेन ।

१४--कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः--

कर्मस्था (कर्ममें वर्तमान) जो क्रिया उसके समान ही क्रिया है जिसकी ऐसा जो कर्ता, वह कर्मवत् हो, इससे यगादि होते हैं । (जहां कर्ममें क्रियाकृत विलक्षणता दिखाई पड़े वहां कर्मस्था क्रिया होती है । जैसे पके ओदनमें ।)

नोट—कर्म ही यदि कर्ता हो अर्थात् क्रियाका कर्तृत्व यदि कर्ममें आरोपित हो तो 'कर्म कर्ता' हो जाता है और प्रायः सकर्मक सभी धातु अकर्मक हो जाते हैं, इसलिये भाव और कर्ता में लकार होता है । भाव वाच्य में कर्म कर्ता से तृतीया हो जाती है । जैसे- भिद्यते काष्टेन' इत्यादि और कर्तृवाच्यमें कर्म-कर्तासे प्रथमा विभक्ति होती है, अन्य कर्म पद नहीं रहता तथा क्रियाका रूप कर्मवाच्यकी क्रियाके तुल्य होता है । यथा -'काष्टं भिद्यते स्वयमेव' । कार्य करनेके समय जो 'कर्मकारक' कर्ताके सुखकर निजगुणोंसे स्वयं ही सिद्ध होता है, उसे 'कर्मकर्ता' कहते है । कहा भी है:--

'क्रियमाणं तु यत् कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति ।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्तुः 'कर्मकर्ते'ति तद्विदः ॥'

---

(४) कृदन्त-विचार—

'कृत्' प्रत्यय धातुके अन्तमें प्रयुक्त होते हैं और उनके योगसे बने शब्द 'कृदन्त' कहलाते हैं। कर्तृवाच्यमें कृदन्त की क्रिया कर्त्ताका विशेषण और कर्म वाच्यमें कर्मका विशेषण होती है तथा भाववाच्यमें नपुंसकलिंगका एक वचनान्त होती है। यथा—

कर्तृवाच्य—स अस्मान् उक्तवान्।

कर्मवाच्य—तेन वयमुक्ताः।

भावाच्य—तेन उक्तम्।

कृदन्तके निम्न मुख्य पांच प्रत्ययों पर ध्यान दो—

१. तव्य-अनीयर्—इनके प्रयोगमें कर्त्तासे तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। सकर्मक धातुसे ये प्रत्यय होनेपर तीनों लिङ्ग और तीनों वचन होते हैं, और अकर्मक धातुसे होनेपर केवल नपुंसक लिंग और एक वचन ही प्रयुक्त होते हैं। यथा—'तेन (तस्य वा) पाठः पठितव्यः'। त्वयेदं कर्तव्यम्, करणीयं वा' 'तेन आसितव्यम्'। प्रायः 'विधि' अर्थमें ही इसका प्रयोग होता है।

२. क्त—'क्त' प्रत्यय भूतकालमें होता है और 'क्त' प्रत्ययान्त क्रिया के कर्तासे तृतीया और कर्मसे प्रथमा विभक्ति होती है तथा कर्मके लिंगके अनुसार ही क्तप्रत्ययान्त पदका लिंग होता है। जैसे—तेन माला निर्मिता। मया फलं भक्षितम्'। अकर्मक धातुसे भावमें 'क्त' प्रत्यय प्रायः नपुंसक लिंगमें होता है। जैसे—मया हसितम्। कुछ धातु ऐसी भी हैं जिनसे 'क्त' प्रत्यय कर्ता में भी होता है। जैसे—गत्यर्थक अकर्मक, श्लिष, शीङ, स्था, आस, वस, जन, रुह और जॄ, धातु। उदाहरण यथा—'वनं गतो रामः'। इत्यादि।

२. क्तवतु—'क्तवतु' प्रत्यय भी भूतकालमें होता है, परन्तु यह कर्तामें ही होता है और कर्तृवाच्यके अनुसार कर्ता और कर्मसे विभक्तियां भी होती हैं। जैसे—'अहं पुस्तकं पठितवान्। तौ पुस्तकं पठितवन्तौ'।

४. क्त्वा—जब एक क्रियाके बाद दूसरी क्रिया की जाती है तब प्रथम कालिक क्रियासे 'क्त्वा' प्रत्यय किया जाता है और क्त्वा प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय

रूपसे प्रयुक्त होती है तथा कर्म आदि मुख्य (द्वितीय) क्रियाके अनुसार ही होते हैं। यथा—'शत्रून् जित्वा निवर्तते रामः'। 'क्त्वा' प्रत्ययान्त क्रियाके पूर्व यदि कोई उपसर्ग रखा जाय तो 'क्त्वा' के स्थान पर 'य' हो जाता है। जैसे—विजित्य, निहत्य, आदि।

५. तुमुन्—जब एक क्रिया करनेके लिये दूसरी क्रिया की जाती है, तब प्रथम क्रियासे 'तुमुन्' प्रत्यय होता है और तुमुन्प्रत्यान्त अव्यय हो जाता है। 'तुमुन्' प्रत्ययान्त क्रियाके कर्मादि प्रथम क्रियाके साथ संबद्ध होते हैं। परन्तु कर्ताका संबन्ध मुख्य क्रियासे ही होता है।

जैसे—'इन्द्रियाणि जेतुमुपक्रमते'॥

---

(५) संख्याओंका गणनाक्रम—

१ =एकम्	९ =नव	१८ =अष्टादश[3]
२ =द्वे	१० =दश	१९ { ऊनविंशतिः / एकोनविंशतिः / एकान्नविंशतिः[4] / एकाद्नविंशतिः }
३ =त्रीणि	११ =एकादश	२० =विंशतिः
४ =चत्वारि	१२ =द्वादश[1]	२१ =एकविंशतिः
५ =पञ्च	१३ =त्रयोदश[2]	२२ =द्वाविंशतिः
६ =षट्	१४ =चतुर्दश	२३ =त्रयोविंशतिः[5]
७ =सप्त	१५ =पञ्चदश	
८ { अष्टौ / अष्ट }	१६ =षोडश	
	१७ =सप्तदश	

(१,३) 'द्व्यष्टनःसंख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः'=द्विशब्दस्य अष्टन् शब्दस्यच संख्या वाचके उत्तर पदे परे आत्स्यात्, न तु बहुव्रीहौ, अशीतिपरे चेत्यर्थः। बहुव्रीहौनिषेधात् द्वौ वा त्रयो वेति विग्रहे'संख्याव्यये'ति बहुव्रीहो द्वित्राः' इत्यत्र आत्वं न भवति। अशीतिपरे आत्वन्नेत्यस्योदाहरणन्तु अनुपदमेव 'द्व्यशीति इतिशक्ष्यामः४।(४) एकेन न विंशतिःइतिविग्रहः।'एकादिश्चैकस्य चादुक'इतिनञःप्रकृतिभावे अदुमागमेच दीर्घे अनुनासिको विकल्पः। (२,५) त्रेस्त्रयः'=प्राक्शतात् संख्याशब्दे उत्तरपदे परतः त्रि शब्दस्य त्रयसादेशःस्यात् नतुबहुव्रीहौ, अशीतिपरे चेत्यर्थः। एवञ्च त्रयसादेशे रुत्वे

२४=चतुर्विंशतिः
२५=पञ्चविंशतिः
२६=षड्विंशतिः
२७=सप्तविंशतिः
२८=अष्टाविंशतिः
२९ {ऊनत्रिंशत्, एकोनत्रिंशत्}
३०=त्रिंशत्
३१=एकत्रिंशत्
३२=द्वात्रिंशत्
३३=त्रयस्त्रिंशत्
३४=चतुस्त्रिंशत्
३५=पञ्चत्रिंशत्
३६=षट्त्रिंशत्
३७=सप्तत्रिंशत्
३८=अष्टात्रिंशत्
३९ {ऊनचत्वारिंशत्, एकोनचत्वारि०}
४०=चत्वारिंशत्
४१=एकचत्वारिंशत्
४२ {द्वाचत्वारिंशत्, द्विचत्वारिंशत्}
४३ {त्रयश्चत्वारिंशत्[३], त्रिचत्वारिंशत्}
४४=चतुश्चत्वारिंशत्
४५=पञ्चचत्वारिंशत्
४६=षट्चत्वारिंशत्

४७=सप्तचत्वारिंशत्
४८ {अष्टाचत्वारिंशत्[३], अष्टचत्वारिंशत्}
४९ {ऊनपञ्चाशत्, एकोनपञ्चाशत्}
५०=पञ्चाशत्
५१=एकपञ्चाशत्
५२ {द्विपञ्चाशत्, द्वापञ्चाशत्}
५३ {त्रयःपञ्चाशत्, त्रिपञ्चाशत्}
५४=चतुःपञ्चाशत्
५५=पञ्चपञ्चाशत्
५६=षट्पञ्चाशत्
५७=सप्तपञ्चाशत्
५८ {अष्टापञ्चाशत्, अष्टपञ्चाशत्}
५९ {ऊनषष्टिः, एकोनषष्टिः}
६०=षष्टिः
६१=एकषष्टिः
६२ {द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः}
६३ {त्रयषष्टिः, त्रिषष्टिः}
६४=चतुःषष्टिः
६५=पञ्चषष्टिः
६६=षट्षष्टिः

६७=सप्तषष्टिः
६८ {अष्टाषष्टिः, अष्टषष्टिः}
६९ {ऊनसप्ततिः, एकोनसप्ततिः}
७०=सप्ततिः
७१=एकसप्ततिः
७२ {द्विसप्ततिः, द्वासप्ततिः}
७३ {त्रयःसप्ततिः, त्रिसप्ततिः}
७४=चतुःसप्ततिः
७५=पञ्चसप्ततिः
७६=षट्सप्ततिः
७७=सप्तसप्ततिः
७८ {अष्टासप्ततिः, अष्टसप्ततिः}
७९ {ऊनाशीतिः, एकोनाशीतिः}
८०=अशीतिः
८१=एकाशीतिः
८२=द्व्यशीतिः[४]
८३=त्र्यशीतिः[५]
८४=चतुरशीतिः
८५=पञ्चाशीतिः
८६=षडशीतिः
८७=सप्ताशीतिः
८८=अष्टाशीतिः[६]

उत्वे च गुणः। (१-३) 'विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्' द्वि-अष्टनः-त्रेश्च

प्रागुक्तम् (द्वि-अष्टनोरात्वं, त्रिशब्दस्य त्रयसादेशश्च) वा स्यात् चत्वारिंशदादौ परे इत्यर्थः ।

(४-६) 'द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः' इति सूत्रे, 'त्रेस्त्रयः' इति सूत्रे च न तु

८९ ऊननवतिः / एकोननवतिः	९४ = चतुर्णवतिः	९९ नवनवतिः / ऊनशतम् / एकोनशतम्
९० = नवतिः	९५ = पञ्चनवतिः	१०० = शतम्
९१ = एकनवतिः	९६ = षण्णवतिः	१०१ = एकशतम्[1]
९२ द्वानवतिः / द्विनवतिः	९७ = सप्तनवतिः	१०२ = द्विशतम्[2]
९३ त्रयोनवतिः / त्रिनवतिः	९८ अष्टानवतिः / अष्टनवतिः	१०३ = त्रिशतम्[3],

इत्यादि ।

अथ संख्यायाः कुत्र विश्राम इत्याह—

"एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा ।
लक्षञ्च नियुतश्चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः ।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धश्च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥"[4]

अशीत्या वियुक्तत्वात् द्व्यष्टन्शब्दयोरात्वं, त्रिशब्दस्य त्रयसादेशश्चाऽत्र न भवत इत्यवधेयम् ।

(१) एकञ्च शतञ्चेति समाहारद्वन्द्वः । (२-३) द्वे च शतञ्च, त्रीणि च शतं च इति समाहारद्वन्द्वः। 'द्व्यष्टनः' इति सूत्रे 'त्रेस्त्रयः' इति सूत्रे च प्राक् शतादिति वक्तव्यम्' इत्युक्तत्वात् शतशब्दे परे द्विशब्दस्य आत्वं, त्रिशब्दस्य त्रयसादेशो न भवतीति । कर्मधारये तु 'द्विशतम्' इत्यस्य २००, 'त्रिशतम्' इत्यस्य ३०० इत्यर्थो भवतीति दिक् । (४) एतत् संख्याक्रमो नेदानीं व्यवहारे दृश्यते ।

—: * :—

एकम् = एकाई	.... १
दश = दहाई	.... १०
शतम् = सैकड़ा	.... १००
सहस्रम् = हजार	.... १०००
दशसहस्रम् = दश हजार	... १००००
लक्षम् = लाख	... १०००००
दशलक्षम् = दस लाख	.... १००००००
कोटि: = कड़ोर	... १०००००००
दशकोटि: = दश करोड़	... १००००००००
अर्बुदम = अरब	... १०००००००००
दशार्बुदम् = दश अरब	... १००००००००००
खर्व: = खरब	.... १०००००००००००
दशखर्व = दश खरब	... १००००००००००००
नीलम् = नील	... १०००००००००००००
दशनीलम् = दश नील	.... १००००००००००००००
पद्म = पदुम	.... १०००००००००००००००
दशपद्म = दश पदुम	... १००००००००००००००००
शंख: = शंख	.... १०००००००००००००००००
महाशंख = दश शंख	.... १००००००००००००००००००

---

(६) गुप्ताऽशुद्धिप्रदर्शनम्

[१] पतिना रक्षिता[२] सर्वा[३] दारा भवति[४] शोभना[५]
सर्वा[६] विधिगृह्णानां[७] सा[८] करोति[९] मतिना[१०] मुदा ।। १ ।।
ते[११] गृहः[१२]कुत्र[१३] मित्राऽस्ति द्रक्षिष्यामि[१४][१५]सखेरह[१६] ।

१. पत्या । पति शब्द को समास में ही घिसंज्ञा होने से नाभाव नहीं होता ।
२. रक्षिताः । दारशब्द के 'दाराः पुंसि च भूम्नि एवं' इस नियम से पुंल्लिङ्ग और नियत बहुवचनान्त होनेसे उसके विशेषण 'रक्षित शब्द भी वैसा होगा ।
३. सर्वे । दारशब्दका विशेषण होनेसे सर्वशब्द भी पुंल्लिङ्ग बहुवचनान्त होगा ।
४. भवन्ति । दाररूप कर्ता के अनुसार भवनक्रिया से बहुवचन होगा ।
५. शोभनाः । पूर्वोक्तनियमानुसार दारविशेषण शोभन से भी बहुवचन होगा ।
६. सर्वम् । 'क्यन्तो घुः' इसलिङ्गानुशासन क्रम से किप्रत्ययान्त विधि शब्द के पुंल्लिङ्ग होने से उसका विशेषण सर्व शब्द भी पुंल्लिङ्ग होगा ।
७. गृह्णाणाम् । 'अट्कुप्वाङ्' से णत्व हो जायगा ।
८. ते । तत् शब्द प्रस्तुत बुद्धिविषय के ग्राहक होने के कारण उपस्थित दारा अर्थ का बोधक होने से पुंल्लिङ्ग बहुवचनान्त होगा ।
९. कुर्वन्ति । कर्तृवाच्य में कर्त्ता के अनुसार क्रिया में वचन और पुरुष की व्यवस्था होने से यहाँ बहुवचनान्त होगा ।
१०. मत्या । स्त्रीलिङ्ग में नाभाव का निषेध है अतः ना आदेश नहीं होगा ।
११. तव । 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ऐसा सूत्र है अतः यहाँ पादके आदिमें रहनेसे तवको ते आदेश नहीं होगा ।
१२. गृहम् । ''गृहाः पुंसि च भूम्न्येव'' इस नियम से एकत्व संख्या अर्थ में गृह शब्द से नपुंसक में एकवचन होना ही समुचित है ।
१३. मित्र ३ ! अस्ति । सम्बोधन में प्लुत होनेसे प्रकृतिभाव होगा ।
१४. द्रक्ष्यामि । दृश्धातुको अनिट् होनेसे लृट् में स्य प्रत्ययको इट् नहीं होगा ।
१५. सख्युः । सखि शब्द को घिसंज्ञाका निषेध होनेसे ''घेर्ङिति'' से गुण न होकर यण् और ''ख्यत्यात्परस्य'' इस सूत्रसे उत्व हो जायगा ।
१६. अहम् । हल्के परे न होनेसे ''मोऽनुस्वारः नहीं होगा ।

विहित्वा[1] सर्वंकार्याणि[2]विप्र[3] दद्यां बहुं[4] धनम् ।।२।।
प्रभुक्त्वा[5] त्वं गृहेगाद्य[6]आगतो[7] सखिना[8] सह ।
[9]भ्रातत्त्वंदीयमित्रोऽत्र[10]नागत[11] केन हेतुना ॥ ३ ।।
तव[12] साकं गमिष्येऽहं[13] नोचेत् प्रेमस्य[14] बन्धने[15] :
मरिष्ये[16] नात्र संदेहस्त्यजिष्यामि[17] असु[18]निजम् ।।४।।

१. विधाय । 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से क्त्वा का ल्यप् हो जानेपर तकरादिके परमें नहीं रहनेसे 'दधातेर्हिः' से हि आदेश नहीं होगा ।
२. कार्याणि । रेफ के उत्तर नकार को 'अट्कुप्वाङ्' से णकार हो जायगा ।
३. विप्राय । दाधातु के योग में सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हो जायगा ।
४. बहु । धन शब्दके विशेषण होनेसे बहुसे भी नपुंसकत्व होगा ।
५ प्रभुज्य । 'समासेऽनञ्पूर्वे' से ल्यप हो जायगा ।
६ गृहात् । अपाय अर्थ भासित होनेपर ध्रुवने अपादानमें पञ्चमी हो जाती है ।
७. आगतः । 'वा शरि' इस सूत्रसे शर् परे रहने पर विकल्प से विसर्गको विसर्ग हो जाता है । पक्षान्तरमें विसर्गको सकार हो जायगा ।
८. सख्या । सखि शब्द को घिसंज्ञा नहीं होती अतः टाको ना नहीं होगा ।
९. भ्रातस्त्वदीयम् । "विसर्जनीयस्य सः" से विसर्ग को सकार हो गया ।
१०. मित्रम् । सखिवाचक मित्रशब्द नपुंसक ही माना गया है ।
११. नागतम् । नपुंसक मित्र का विशेषण होने से नपुंसक ही होगा ।
१२. त्वया । सहार्थवाचक शब्दके योगमें 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया होगी ।
१३. गमिष्यामि । गम्धातु परस्मैपदी है अतः तङ् नहीं होगा ।
१४. प्रेम्ण प्रेमन् शब्द नकारान्त है इस लिये अदन्तत्व के अभाव होने से 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इस सूत्र से ङस् को स्य आदेश नहीं होगा ।
१५. बन्धनात् । हेतु अर्थ में 'हेतौ' इस सूत्र से पञ्चमी हो जाती है ।
१६. मरिष्यामि । मृधातु को लुङ् लिङ् और शित्प्रत्यय में 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' इस सूत्र से आतमने पद होनेसे लृट् में परस्मैपद ही होगा ।
१७. त्यक्ष्यामि । त्यज् धातुको अनिट् होने से इडागम नहीं हुआ ।
१८. असून् । असु शब्द बहुवचनान्त है । (पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः'
१९. निजान् । बहुवचनान्त असु के विशेषण होने से बहुवचनान्त होगा ।

वर्त्मेनानेन[१] गच्छन्तः कर्मं[२] कुर्वन्ति ये नरः[३] ।
नमस्कृत्वा[४] प्रभुं यान्ति मरित्वा[५] ते न संशयः ॥ ५ ॥
गुरुणा[६] श्रुतिमधीते नाधीती शब्दानुशासनम्[७] ।
न्यायशास्त्रमधीयन्तो[८] नो बिभ्यन्ति[९] केनचित्[१०] ॥ ६ ॥
ये नो ददन्ति[११] नो भुङ्क्ते[१२] पुनर्रमन्ति[१३] योषितैः[१४] ।

१. वर्त्मना । वर्त्मन् शब्द नान्त है अतः टाको इन आदेश नहीं हुआ ।

२. कर्म । कर्मन् शब्द नकारान्त नपुंसक है इसलिए "स्वमोर्नपुंसकात्" से अम् विभक्ति का लुक् होकर नकार का भी लोप हो जायगा ।

३. नराः । नर शब्द को अदन्त होने से जस् विभक्ति में 'प्रथमयोः' से दीर्घ हो जाता है। ऋकारान्त नृ शब्द के ग्रहण पक्ष में 'नरः' का प्रयोग ठीक ही है ।

४. नमस्कृत्य । गति संज्ञक नमः शब्द के साथ "क्त्वा" को "कुगति-प्रादयः" से समास होने पर "समासेऽनञ् पूर्वे" से क्त्वा को ल्यप् हो जायगा ।

५. मृत्वा । मृधातु अनिट् है इसलिये इडागम नहीं होगा और कित् होने से "क्ङिति च" से गुण का निषेध भी हो जायगा ।

६. गुरोः । "आख्यातोपयोगे च" से नियम पूर्वक जिससे विद्या ग्रहण करें उससे अपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है ।

७. शब्दानुशासने । "क्तस्येन्विषस्य कर्मण्युपसंख्यानम्" से सप्तमी होगी ।

८. अधीयानः । इङ् धातु आत्मनेपदी है इसलिये शानच् प्रत्यय होगा ।

९. बिभ्यति । भीधातु अभ्यस्त संज्ञक है इसलिये 'अदभ्यस्तात्" । से झि प्रत्यय का अत् आदेश हो जायगा ।

१०. कस्माच्चित् । भयार्थक धातु के योग में "भीत्रार्थानां भयहेतुः" से भय के हेतु वाचक शब्द के अपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है

११. ददति । दाधातु भी अभ्यस्त संज्ञक है अतः अदादेश होगा ।

१२. भुञ्जते । कर्ता के बहुत्व होने से बहुवचनकी क्रिया होगी ।

१३. पुनारमन्ते । रम् धातु आत्मनेपदी है इसलिये झप्रत्यय का अन्त आदेश होकर "रोरि" इस से रेफ का लोप होने पर दीर्घ हो जायगा ।

१४. योषिद्भिः । योषित् शब्द तकारान्त है अतः ऐसा देश नहीं होगा ।

जहित्वा[1] सर्व ते जान्ति[2] जगतेऽस्मिन्[3] विनिन्दितः ॥ ७॥

सन्धिस्त्वया न कर्तव्या[4] महती[5] रिपुणा सह ।
प्राप्ते[6] विपत्तौ धीरत्वं नो जहन्ति[7] महज्जनाः[8] ॥ ८ ॥

फले इमेऽतिमधुरे[9] बाला जक्षन्ति[10] हृषिताः[11] ।
क्रीडन्ते[12] च अहोरात्रं[13] रोदन्ति[14] न कदाचनः[15]॥९॥

---

१. हात्वा । क्त्वा प्रत्यय आर्ध धातुक है इसलिये श्लु प्रत्यय नहीं होने से द्वित्व नहीं होगा ।

२. यान्ति । या धातु यकारादि है इसलिये जकारादी अशुद्ध है ।

३. जगति । जगत् शब्द तान्त है अतः ङिविभक्ति में गुण नहीं होगा ।

४. कर्तव्यः । सन्धि शब्द पुंल्लिङ्ग है अतः उसका विशेषण पुंल्लिङ्ग ही होगा

६. प्राप्तायाम् । विपत्तिशब्द 'क्तिन्नन्तं स्त्रियाम्' इस नियमसे स्त्रीलिङ्ग है । अतः उसका विशेषण होनेसे यह भी स्त्रीलिङ्ग हो जायगा ।

७. जहति । 'अदभ्यस्तात्' से झिप्रत्ययको अत् आदेश होगा ।

८. महाजनाः । महत् शब्दको 'आन्महतः से आत्व होगा ।

९. इमे अतिमधुरे । 'ईदूदेद्द्विवचनम्' से प्रगृह्य होकर प्रकृतिभाव होगा ।

१०. जक्षति । 'जक्षित्यादयः षट्' से झिप्रत्ययका अत् आदेश होगा ।

११. हृष्टाः । हृष्धातु अनिट् है अतः क्तप्रत्ययको इडागम और कित् होनेसे गुण नहीं हुआ ।

१२. क्रीडन्ति । क्रीडधातु परस्मैपदी है अतः आत्मनेपद नहीं होगा ।

१३. चाहोरात्रः । श्लोकपादके मध्यमें रहनेसे सन्धि और "रात्राह्नाहः पुंसि" से पुंस्त्व हो जायगा ।

१४. रुदन्ति । झिप्रत्ययको 'सार्वधातुकमपित्' से ङित् होनेसे गुण नहीं होगा ।

१५. कदाचन । 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' से अव्यय होनेसे विभक्ति नहीं होगी ।

नीचाऽपि[1] ये नमस्यन्ति विष्णवे[2] कुप्यन्ति नो नवा ।
प्राप्त्वा[3] महत्वमाप्तास्ते वञ्चयन्ति[4] न सज्जनान् ॥ १० ॥

---

(७) उपसर्ग-विचार—

उपसर्गको गति तीन प्रकारकी होती है। कोई उपसर्ग धातुके मुख्यार्थको बाधकर नवीन अर्थका बोध कराता है, कोई धात्वर्थका ही अनुवर्त्तन करता है और कोई विशेषण होकर उसी धात्वर्थको और भी स्फुटित कर देता है।

तदुक्तम्—

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्त्तते ।
विशिनष्टि तमेवाऽर्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥

अन्यच्च—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराऽऽहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥

विविध उपसर्गके बलसे धात्वर्थ भी विविध अर्थमें परिवर्तित होता है। (निम्न परिशिष्ठ नं० ८ देखो)।

---

१. नीचा अपि । यलोप की असिद्धता होनेसे दीर्घ नहीं होगा ।
२. विष्णुम् । कर्मत्व होनेसे कर्म में द्वितीया होगी ।
३. प्राप्य । 'समासेऽनञ्पूर्वे' से क्त्वा प्रत्ययका ल्यप् आदेश होगा ।
४. वञ्चयन्ते । 'गृधिवञ्च्योः' से आत्मनेपद होजायगा ।

(८) अनुवादोपयोगिधात्वर्थ-

अञ्चु -- गतिपूजनयोः—

१ अञ्चति—जाता या पूजता है ।
२ प्राञ्चति -- उन्नत होता है ।
३ पराञ्चति—लौटता है ।
४ न्यञ्चति—नीचे जाता है ।
५ प्रत्यञ्चति—अवनति प्राप्त करता है ।
६ उदञ्चति—ऊपर जाता है ।
७ सहाञ्चति—साथ जाता है ।
८ अवाञ्चति—अधोमुख होता है ।
९ पर्युदञ्चति—पैंचा लेता है ।
१०समञ्चति-अच्छीतरह जाता या पूजताहै।
११ तिरोञ्चति—टेढा जाता है ।

अय गतौ —

१ अयते—जाता है,
२ प्लायते —भागता है,
३ पलायते— ,,
४ उदयते—उदय लेता है,
५ व्ययते—खर्च करता है,
६ निरयते—निकलता है,
७ दुरयते—दुःखी होता है,
८ निलयते—विलीन होता है,
९ दुलयते — काँपता है,

अर्थ उपयाञ्चायाम्--

१ अर्थयते—मांगता है,
२ समर्थयते—अनुमोदन करता है,
३ अभ्यर्थयते—अनुमोदन करता है,
४ प्रार्थयते—प्रार्थना करता है,
५ व्यर्थयते—विफल करता है,
६ अन्वर्थयते—अर्थानुकूल करता है,

असु क्षेपणे—

१ अस्यति—फेंकता है,
२ अपास्यति—दूर करता है,
३ अध्यस्यति—आरोप करता है,
४ वन्यस्यति—स्थापित करता है,
५ न्यस्यति—सौंपता है,
६ अभ्यस्यति—कण्ठस्थ करता है,
७ निरस्यति--हटाता है,
८ व्युदस्यति—निकालता है,
९ परास्यति—परास्त करता है,
१० व्यत्यस्यति--उलटपलट करता है,
११ विपयस्यति—विपर्यास करता है,
१२ समस्यति—संक्षिप्त करता है,

आप्लृ व्याप्तौ—

१ आप्नोति—प्राप्त करता है,
२ व्याप्नोति—{ व्याप्त करता है, फैलता है,
३ समाप्नोति—{ समाप्त करता है, समाप्त होता है,
४ अवाप्नोति—प्राप्त करता है,
५ पर्याप्णोति—{ पर्याप्त करता है, पर्याप्त होता है,

आस उपवेशने—

१ आस्ते—बैठता है,
२ उदास्ते—उदासीन होता है,
३ उपास्ते — ध्यान करता है,
४ अध्यास्ते—रहता है,
५ अन्वास्ते—पीछे बैठता है,

इण् गतौ—

१ एति—जाता है,
२—प्रत्येति—विश्वास करता है,

३ अत्येति—नष्ट होता है।
४ अन्वेति—पीछे मिलता है।
५ विपर्येति—उलटा समझता है।
६ उपैति—पास जाता या आता है।
७ अभ्येति—सामने आता है।
८ व्यत्येति—उलट पलट करता है। या बीतता है।
९ व्येति—खर्च करता है।
१० अवैति—जानता है।
११ अपैति—दूर होता है।
१२ समवैति—सम्बद्ध होता है।
१३ समन्वेति—समन्वय करता है।
१४ अभिप्रैति—इष्ट करता है।
१५ उदेति—उदित होता है।

ईह चेष्टायाम्—

१ ईहते—चेष्टा करता है।
२ समीहते—चाहता है।
३ निरीहते—निःस्पृह होता है।

ईक्षदर्शने—

१ ईक्षते—देखता है।
२ अपेक्षते—इच्छा करता है।
३ उपेक्षते—लापरवाही करता है।
४ वीक्षते—देखता है।
५ प्रतीक्षते—प्रतीक्षा करता है।
६ परीक्षते—परीक्षा करता है।
७ निरीक्षते—निगरानी करता है।
८ समीक्षते—विमर्श करता है।
९ उत्प्रेक्षते—सम्भावना करता है।
१० अन्वीक्षते—चिन्तन या मनन करताहै।

ऊह वितर्के—

१ ऊहते—विचार करता है।
२ अपोहते—छोड़ता है।
३ उपोहते—सूक्ष्मविचार करता है।
४ समूहते—शोधित करता है।
५ प्रत्यूहते—विघ्न डालता है।
६ व्यूहते—संगठित करता है।
७ दुरूहते—कठिनाई से जानता है।

(डु) कृञ् करणे—

१ करोति—करता है।
२ अनुकरोति—नकल करता है।
३ अपकरोति—हानि करता है।
४ विकुरुते—उच्चारण करता है।
५ विकुर्वते—विकार प्राप्त करता है।
६ उपकुरुते—सेवन करता है।
७ अधिकुरुते—क्षमा या पराभव करताहै।
८ तिरस्करोति—तिरष्कार करता है।
९ निराकरोति—हटाता है।
१० परिष्करोति—परिष्कृत करता है।
११ आविष्करोति—प्रकट करता है।
१२ संस्करोति—संस्कार करता है।
१३ उत्कुरुते—चुगली करता है।
१४ उदाकुरुते—झपटता है।
१५ प्रकुरुत जबर्दस्ती करता है।
१६ उपस्कुरुते—दूसरे का गुण ग्रहण करता है।
१७ अलंकरोति—भूषण पहनता है।
१८ उपकरोति—भलाई करता है।
१९ प्रतिकरोति—प्रतिकार करता है।
२० अपाकरोति—खण्डन करता है।
२१ प्रत्युपकरोति—प्रत्युपकार करताहै

क्रमुपाद विक्षेपे—

१ क्रामति चलता है।
२ क्रमते—उत्साह करता है।
३ उपक्रमते—आरम्भ करता है।
४ प्रक्रमते— ,, ,,
५ विक्रमते—आगे बढ़ता है।
६ पराक्रमते—अप्रतिहत होता है।

७ आक्रमते—उदय लेता है।
८ अतिक्रामति—उल्लंघन करता है।
९ परिक्रामति—प्रदक्षिण करता है।
१० निष्क्रामति—निकलता है।
११ अपक्रामति—हटता है।
१२ संक्रामति—संक्रान्त होता है।
१३ अनुक्रामति—अनुक्रम करता है।
१४ आक्रामति ऊपर जाता है।

गम्लृ गतौ—

१ गच्छति—जाता है।
२ आगच्छति—आता है।
३ संगच्छते—संगत होता है।
४ निर्गच्छति—निकलता है।
५ अनुगच्छति—पीछे जाता है।
६ अवगच्छति—जानता है।
७ अधिगच्छति—प्राप्त करता है।
८ अभ्यागच्छति—सामने आता है।
९ प्रतिगच्छति—लौटता है।
१० अभ्युपगच्छति—स्वीकार करता है।
११ उद्गच्छति—ऊपर जाता है।
१२ अपगच्छति—दूर हटता है।

ग्रह—उपादाने—

१ गृह्णाति—लेता है।
२ आगृह्णाति—आग्रह करता है।
३ अनुगृह्णाति—कृपा करता है।
४ दुरागृह्णाति—हठ करता है।
५ प्रतिगृह्णाति—दान लेता है।
६ विगृह्णाति—लड़ाई करता है।
७ निगृह्णाति—कैद करता है।
८ संगृह्णाति—इकट्ठा करता है।
९ परिगृह्णाति—आसक्ति करता है।

चर गतिभक्षणयोः—

१ चरति—घूमता या खाता है।
२ उच्चरते—उल्लंघन करता है।
३ उच्चरति—ऊपर जाता है।
४ विचरति—विचरण करता है।
५ आचरति—आचरण करता है।
६ परिचरति—सेवा करता है।
७ उपचरति—उपचार करता है।
८ अनुचरति—अनुसरण करता है।
९ संचरते—भ्रमण करता है।
१० दुराचरति—बुरा आचरण करता है।
११ अतिचरति—जादा गमन करता है।
१२ व्यभिचरति—व्यभिचार करता है।
१३ अपचरति—विपरीत करता है।

चिञ् चयने—

१ चिनोति—चुनता है।
२ परिचिनोति—पहचानता है।
३ निचिनोति—इकट्ठा करता है।
४ उपचिनोति—बढ़ाता है।
५ अपचिनोति—घटाता है।
६ संचिनोति—जमा करता है।
७ निश्चिनोति—निश्चय करता है।
८ समुच्चिनोति—अधिक करता है।
९ अन्वाचिनोति—आनुषङ्गिककरताहै
१० अवचिनोति—इकट्ठा करता है।

ज्ञा अवबोधने—

१ जानाति—जानता है।
२ जानीते—प्रवृत्त होता है।
३ अपजानीते—छिपाता है।
४ प्रतिजानीते—प्रतिज्ञा करता है
५ अनुजानाति—अनुमति देता है
६ अभ्यनुजानाति—स्वीकार करता
७ प्रत्यभिजानाति—प्रत्यक्ष का स्मरण करता है।
८ अभिजानाति—पहचानता है

९ उपजानाति—आरम्भ करता है।
१० संजानीते—देखता है।
११ अवजानाति—अपमान करता है।
१२ विजानाति—निन्दा करता है।

णीञ् प्रापणे—

१ नयति—लेजाता है।
२ विनयति—विनय करता है।
३ विनयते—गिनता या खर्चकरता है।
४ अनुनयति—मनाता है।
५ परिणयति—विवाह करता है।
६ निर्णयति निर्णय करना है।
७ अभिनयति—अभिनय करता है।
८ उपनयति—पासमें लाता है।
९ अपनयति—हटाता है।
१० आनयति—लाता है।
११ प्रणयति—प्रेम करता है।
१२ उन्नयते—ऊपरले जाता है।

तॄ प्लवनतरणयोः—

१ तरति—तैरता है।
२ अवतरति—उतरता है।
३ वितरति—देता है।
४ उत्तरति—जबाव देता है।
५ संतरति—ऊपर तैरता है।

दिश अतिसर्जने—

१ दिशति—देता है।
२ आदिशति—आज्ञा देता है।
३ निर्दिशति—बतलाता है।
४ उद्दिशति—उद्देश करता है।
५ उपदिशति—उपदेश करता है।
६ निदिशति—अनुमति देता है।
७ संदिशति—संदेश कहता है।
८ व्यपदिशति-मुख्यव्यवहारकरता है।
९ अतिदिशति—काल्पनिक व्यवहार करता है।
१० अपदिशति—वहाना करता है।
११ प्रतिनिर्दिशति-विधेयकोबतलाताहै

(डु) धाञ् —धारणपोषणयोः—

१ दधाति—धारण करता है।
२ विदधाति करता है।
३ अनुसंदधाति—अनुसंधान (खोज) करता है।
४ अन्तर्धत्ते—छिपता है।
५ तिरोधत्ते— ,, ,,
६ अभिधत्ते—बोलता है।
७ अवधत्ते—ध्यान देता है।
८ पिधत्ते—ढाँकता है।
९ अपिधत्ते— ,, ,,
१० संधत्ते—मेलकरता है।
११ परिधत्ते—पहनता है।
१२ आधत्ते—स्थापित करता है।
१३ निधत्ते—रखता है।
१४ प्रणिधत्ते—ध्यानकरता है।
१५ प्रतिनिधत्ते—प्रतिनिधिकरता है।

पत्लृ पतने—

१ पतति—गिरता है।
२ प्रणिपतति—प्रणाम करता है।
३ निपतति—गिरता है।
४ उत्पतति—उड़ता है।
५ प्रपतति—गिरता है।

पद गतौ—

१ पद्यते—जाता है।
२ उत्पद्यते—पैदा होता है।
३ विपद्यते—मरता है।
४ संपद्यते—सुखी होता है।
५ उपपद्यते—युक्त होता है।
६ आपद्यते—षोद लगता है।

७ प्रपद्यते—शरण में जाता है।
८ निष्पद्यते—निष्पन्न होता है।
९ प्रतिपद्यते—आज्ञा मांगता है।
१० व्युत्पद्यते—व्युत्पन्न होता है।

वन्ध बन्धने—

१ बध्नाति—बांधता है।
२ प्रबध्नाति—प्रबन्ध करता है।
३ निबध्नाति—रचता है।
४ प्रतिबध्नाति—रोक लगाता है।
५ सम्बध्नाति—जोड़ता है।
६ उद्बध्नाति—फांसी लगाता है।
७ निर्बध्नाति—प्रेम करता है।

भू सत्तायाम—

१ भवति—होता है।
२ अनुभवति—अनुभव करता है।
३ अभिभवति—दबाता है।
४ पराभवति—पराभव करता है।
५ परिभवति—तिरस्कार करता है।
६ उद्भवति—उत्पन्न होता है।
७ आविर्भवति—प्रकट होता है।
८ प्रादुर्भवति—,, ,, ,,
९ सम्भवति हो सकता है।
१० तिरोभवति—छिपता है।
११ अन्तर्भवति—,, ,, ,,
१२ प्रभवति—समर्थ या पैदा होता है।

मनु-अवबोधने—

१ मन्यते—मानता है।
२ अवमन्यते—तिरस्कार करता है।
३ अनुमन्यते—सलाह देता है।
४ संमन्यते—सन्मान करता है।
५ विमन्यते—उपेक्षा करता है।
६ अभिमन्यते—घमण्ड करता है।

युजिर योगे—

१ युनक्ति—जोड़ता है।
२ अभियुनक्ति—अभियोगकरता है।
३ उद्युनक्ति—उद्योग करता है।
४ संयुनक्ति—संयुक्त करता है।
५ प्रतियुनक्ति स्पर्द्धा करता है।
६ अनुयुनक्ति—पूछता है।
७ पर्यनुयुनक्ति—प्रत्युत्तर देता है।
८ उपयुनक्ति—उपयोग करता है।
९ वियुनक्ति—वियुक्त करता है।
१० नियुनक्ति—नियुक्त करता है

रुह बीजजन्मनि—

१ रोहति—जमता है।
२ प्ररोहति—उत्पन्न होता है।
३ अधिरोहति—चढ़ता है।
४ अवरोहति—उतरता है।
५ आरोहति—चढ़ता है।
६ संरोहति—मिलता है।

लप लपने—

१ लपति—बोलता है।
२ विलपति—विलाप करता है।
३ प्रलपति—बकवास करता है।
४ आलपति—बोलता है।
५ संलपति—वार्तालाप करता है।
६ अपलपति—छिपाता है।

वद व्यक्तायां वाचि—

१ वदति—बोलता है।
२ अपवदते—छोड़ता है।
३ अपवदति—दूषित करता है।
४ अनुवदति—अनुवाद करता है।
५ उपवदते—प्रार्थना करता है।
६ विवदते—झगड़ता है।
७ संप्रवदन्ते—मिलकर बोलता है
८ अनुवदते—तुल्य बोलता है।
९ विप्रवदन्ते—विरुद्ध बोलता है।

१० प्रतिवदति–जबाब देता है।
११ संवदति—बात करता है।

वृतु वर्तने—

१ वर्तते—है।
२ प्रवर्तते—प्रवृत्त होता है।
३ निवर्तते—लौटता है।
४ परिवर्तते—घूमता है।
५ अनुवर्तते—पीछे चलता है।
६ निवर्तते—शान्त होता है।
७ दुर्वर्तते-बुरा आचरण करता है।
८ विवर्तते—बदलता है।
९ आवर्तते—दुहराता है।

षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—

१ सीदति–ठहरता या दुःखी होता है।
२ प्रसीदति—खुश होता है।
३ विषीदति—खिन्न होता है।
४ निषीदति—बैठता है।
५ अवसीदति—थकता है।
६ पर्यवसीदति-समाप्त होता है।
७ उपसीदति–पास में बैठता है।

ष्ठा गतिनिवृत्तौ—

१ तिष्ठति—ठहरता है।
२ प्रतिष्ठते—प्रस्थान करता है।
३ उपतिष्ठते—उपस्थान करता है।
४ उत्तिष्ठति—उठता है।
५ अनुतिष्ठति—करता है।
६ संतिष्ठते—मरता है।
७ अवतिष्ठते—स्थिर होता है।

सृ गतौ—

१ सरति—जाता है।
२ अनुसरति–अनुसरण करता है।
३ प्रसरति—फैलता है।
४ अभिसरति—निकलता है।
५ निःसरति—निकलता है।
६ अपसरति—हटता है।
७ परिसरति—घूमता है।
८ संसरति—सम्बद्ध होता है।
९ उत्सरति—अलग होता है।
१० उपसरति—पास जाता है।

हृञ् हरणे—

१ हरति—ले जाता है।
२ अपहरति—चुराता है।
३ अनुहरति—नकल करता है।
४ परिहरति—छोड़ता है।
५ आहरति—लाता है।
६ व्याहरति—बोलता है।
७ व्यवहरति-व्यवहार करता है।
८ अभ्यवहरति—खाता है।
९ प्रहरति—मारता है।
१० संहरति–नाश करता है।
११ उपसंहति–उपसंहार करता है।
१२ विहरति—बिहार करता है।
१३ समाहरति—इकट्ठा करता है।
१४ उद्धरति—निकालता है।
१५ उपहरति—उपहार [illegible]ता है।
१६ उपाहरति—लाता है।
१७ उदाहरति—उदाहरण देता है।
१८ प्रत्युदाहरति–दूसराउदाहरणदेताहै।

क्षिप प्रेरणे

१ क्षिपति—फेकता है।
२ निक्षिपति–नीचेफेकताहै। सौंपत्ताहै।
३ प्रक्षिपति—प्रक्षेप करता है।
४ आक्षिपति—दोष लगाता है।
५ अधिक्षिपति—दोष लगाता है।
६ संक्षिपति–छोटा करता है।
७ उत्क्षिपति—ऊपर फेकता है।
८ अधः क्षिपति—नीचे फेकता है।
९ विक्षिपति—विक्षिप्त होता है।

———

(९) व्याकरणादिलक्षणम्

१—व्याकरणम्

व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति—शब्दज्ञानजनकं व्याकरणम्, तच्च सूत्रम्। जिससे साधु शब्दका ज्ञान हो उसी का नाम व्याकरण है। (व्याकरणका इतवृत्त मेरी' इन्दुमती' टीकायुत 'लघुकौमुदी' की प्रस्तावनामें पढ़िये

२—सूत्रलक्षणम्

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

सूत्रोंके भेद—सञ्ज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

१. संज्ञासूत्रं यथा—वृद्धिरादैच्, अदेङ्गुणः, इत्यादि।
२. परिभाषासूत्रम्—(कुव्यवस्थायां सुव्यवस्थासम्पादकं सूत्रम्)
यथा—आदेः परस्य, तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, इत्यादि)
३. विधिसूत्रं यथा—इकोयणचि, एचोऽयवायावः इत्यादि।
४. नियमसूत्रं यथा—कृत्तद्धितसमासाश्च, रात्सस्य, इत्यादि।
५. अतिदेशसूत्रं यथा—'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ, तृज्वत्क्रोष्टुः, इत्यादि।
६. अधिकारसूत्रं यथा—ङ्याप्प्रातिपदिकात्, आर्धधातुके, इत्यादि।

३—वार्तिकलक्षणम्

उक्ताऽनुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः॥

४—भाष्यलक्षणम्

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वर्णैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

५—व्याख्यानलक्षणम्।

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपश्च समाधानं व्याख्यानं षड्विध मतम्॥

———

(१०) विद्यार्थी-शिक्षासूत्रम्

छात्राणामुपकाराय हितमुपदिशाम्यहम् ।
येन जीवनमेतेषामुन्नतिप्रवणं भवेत् ॥ १ ॥

छात्रों के उपकारार्थ मैं कुछ हित बात बतलाता हूँ । जिससे उनका जीवन उन्नतिशील हो ॥ १ ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य समाधाय मनस्तथा ।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय प्रभुं वन्देदतन्द्रितः ॥ २ ॥

सबसे पहले इन्द्रियोंको अपने वशमें कर और मनको एकाग्र बनाकर प्रति-रोज सवेरे उठकर आलस्य छोड़कर ईश्वर की वन्दना करे ॥ २ ॥

शौचस्नानादिकं कृत्वा सन्ध्याहवनमाचरेत् ।
पूर्वं पठितपाठानामावृत्तिं निव्यशश्चरेत् ॥ ३ ॥

शौच दन्तधावन स्नान आदि शारीरिक पवित्रता सम्पादन कर सन्ध्या (परमात्मचिन्तन) और हवन करें । तदुपरान्त पढ़े हुए पाठों का आवर्तन करें ॥

ततो गुरुमुखाद्ग्रन्थमाद्योपान्तं पठेन्मुदा ।
गुरुशुश्रूषणं कृत्वा सततं पाठमभ्यसेत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर गुरु मुखसे अपने२ पाठों को पढ़े । बादमें गुरुकी यथोचित सेवाकर हमेशा पाठ का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

परीक्षोत्तीर्णतार्थाऽपि योग्यता परमौचिती ।
अर्जनीया सदा शिष्यैर्वर्ध्या व्युत्पत्तिरन्ततः ॥ ५ ॥

परीक्षामें सफलता प्राप्त्यर्थ उचित योग्यता हासिल करते हुये आन्तरिक व्युत्पत्ति बढ़ाने की भी चेष्टा करें ॥ ५ ॥

व्युत्पत्तिमन्तरा नैव प्रतिपत्स्यात् कथंचन ।
अतो व्युत्पत्सुभिर्भाव्यं छात्रैर्जिज्ञासुभिस्तथा ॥ ६ ॥

व्युत्पत्तिके विना कुछ भी पदार्थोका वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये विद्यार्थियों को व्युत्पत्ति की जिज्ञासा अवश्य रखनी चाहिये ॥ ६ ॥

समयस्य महामूल्यमज्ञात्वा य उपेक्षते।
जीवनं यस्य व्यत्येति व्यर्थमेव न संशयः ॥ ७ ॥

जो विद्यार्थी समय की कीमत को नहीं जानकर (पढ़ने में) लापरवाही करता उसका जीवन निःसन्देह व्यर्थ (कंटकाकीर्ण) हो जाता है ॥ ७ ॥

परीक्षां दातुकामो वै लेखशक्तिं विवर्धयेत्।
अल्पेनापि सुलेखेन परीक्षोत्तीर्यते ध्रुवम् ॥ ८ ॥

परीक्षा देनेवालोंको चाहिये कि लिखने की शक्तिको अच्छी तरह बढ़ावें क्योंकि थोड़े भी सुन्दर लेखोंसे निश्चितरूपेण परीक्षामें सफलता मिलती है॥८॥

लेखशक्तिविहीनेन बहुश्रमयुताऽपि वा।
परीक्षामुत्तरीतुं हा ! पार्यते न कथंचन ॥ ९ ॥

उत्तम लेख करनेमें कमजोर छात्र अधिकसे अधिक मेहनत करने पर भी परीक्षा में सफलता प्राप्त नहीं करते ॥ ९ ॥

परीक्षा भवनं गत्वा मनश्चाञ्चल्यमुत्सृजेत्।
निर्भीकतां समासाद्य शान्तचित्तो भवेज्जनः॥ १० ॥

परीक्षाभवनमें जाकर मनकी चञ्चलता को दूर कर हृदयसे भयको बिलकुल हटाकर प्रसन्नचित्त हो जाना चाहिये ॥ १० ॥

प्रश्नपत्रं गृहीत्वादौ प्रश्नान् सर्वान् निभाल्य च।
उत्तरं विदितं सम्यगादौ लेख्यं सविस्तरम् ॥ ११ ॥

पहले प्रश्नपत्र लेकर सब प्रश्नोंको अच्छी तरह हृदयङ्गम करके सबसे पहिले जिस प्रश्न का उत्तर खूब उत्तम रूपसे आता हो उसीको लिखें ॥ ११ ॥

कालानुपातमाश्रित्य सारगर्भेण सत्वरम्।
संक्षेपेणैव लेखेन प्रश्नानामुत्तरं लिखेत् ॥ १२ ॥

परीक्षा समयके औसत को ध्यानमें रखकर संक्षेपमें ही सारगर्भित लेखसे अनिवार्य प्रश्नोंका उत्तर लिखना चाहिये ॥ १२ ॥

समयस्य समाप्तेः प्राक् स्वासनं परिहाय च।
केन्द्रान्न बहिर्गच्छेदनुतापोऽन्यथा भवेत् ॥ १३ ॥

समयके समाप्त होनेसे पहिले आसनको परित्याग कर केन्द्र भवनसे बाहर नहीं निकलें, नहीं तो बड़ी हानि होगी ॥ १३ ॥

सिंहावलोकनन्यायात् शोधयेल्लिखितोत्तरम्।
गच्छतः स्खलनन्यायात् जाता त्रुटिर्विनश्यति ॥ १४ ॥

अन्तमें लिखित उत्तरोंको पीछेकी एक निगाह डालकर संशोधित करलें, जिससे भ्रमवश लेखकी भूलचूक दूर हो जायगा ॥ १४ ॥

———